आमुख

आत्मा अनादि काल से जड तत्व से सम्बन्धित रही है। यही कारण है कि वह आत्म धर्म की अपेक्षा जड धर्मों से अधिक प्यार करती है। शरीर स्वय जड़ है इस के विकार भी जड ही हैं, किन्तु अज्ञानता वश आत्मा इन्हे अपना समझ पुनः पुन. इनमें प्रवृत होती रहती है। सचमुच आत्मा के जन्म मरण आदि दुखो का कारण भी यही है।

कार्य निष्पत्ति के लिये उपादान और निमित्त ये दो हेतु आवश्यक होते हैं।

आत्मा अपने आप मे रमण कर अपने हेय ज्ञेय उपादेय को समझकर मुमुक्षु बने यह उपादान सिद्धि है, तदन्तर साधारण से साधारण निमित्त भी उसमें पुरुषार्थ जागृत कर उसे मोक्ष मार्ग की ओर बढा सकता है।

यदि उपादान (आन्तरिक हेतु) अपुष्ट हो तो उस स्थिति मे निमित्त सहयोग के सुमेरु भी आत्मा को जागृत नहीं कर सकते। अत· मुख्य आवश्यकता तो उपादान को पुष्ट करने की ही है। यह हर एक साधक का ध्येय होना चाहिये। किसी भीतर सोने वाले व्यक्ति को बाहर वाला जगा सकता है किन्तु बाहर आने के लिये उसे अपने कमरे के अन्दर की गुण्डी तो स्वय को ही खोलनी होगी बाह्य व्यक्ति अन्दर की गुण्डी खोलने में असमर्थ है। आत्म जागृति के लिये भी यही प्रक्रिया है। बाह्य साधन जगा सकते हैं किन्तु जागृति का लाभ उठाना हर एक व्यक्ति के अपने उपादान पर ही आधारित है।

प्रस्तुत पुस्तक मे कुल ऐसा अच्छा सग्रह है जो मुमुक्षु व्यक्ति को नयी प्रेरणा दे सकता है मुख्यतया नवीन साधकों के लिये खास उपयोगी हो सकता है।

श्रावक श्री वदन चन्द जी एक अच्छे अध्यात्म प्रिय गुणानुरागी व्यक्ति है; उन्ही की यह खोज है। प्रस्तुत पुस्तक का संग्रह कर्त्ता भी कोई अध्यात्म प्रिय साधक रहा होगा। किन्तु प्रारम्भ के और कुछ अन्त के पत्र उपलब्ध नही होने से उन महोदय का नाम नही दिया जा सका। प्रकाशक महोदय उनसे क्षमा चाहते हैं।

सु श्रावक श्री लादूमल नारायणमल बरवा निवासी ने द्रव्य प्रदान कर इसे साधकों के लिये सुलभ बनाई। उनकी हार्दिक इच्छा है कि गुणानुरागी व्यक्ति इससे प्रेरित होकर आत्म चिंतन की ओर अग्रसर होंगे तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूंगा।

(सिंहपोल जोधपुर) ' मुनि कुमुद '

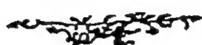
वीर निर्वाणोत्सव

१२ नव. ६६

अनुक्रमणिका

ॐ अर्हम्

आत्म शिक्षा ।



राग निवारण दोहे ।

अरे जीव भव वन विषै, तेरा कौन सहाय ।
जिनके कारण [1]पचि रह्यो, तेतो तेरे नाय ॥१॥
संसारी को देखिले, सुखी न एक लगार ।
अब तो पीछा छोडिदे, मत धर सिर पे भार ॥२॥
झूठे जग के कारणे, तू मत कर्म बंधाय ।
तू तो रीतो ही रहे, धन पेला ही खाय ॥३॥
तन धन संपति पायके [2]मगन न हो मन मांय ।
कैसे सुखिया होयगा, सोवो लाय लगाय ॥४॥
ठाठ देखे भूले मति, ए पुद्‌ल [3]परयाय ।
देखत २ थांहरे, जासी थीर न रहाय ॥५॥
लूटेंगे ज्ञानादि धन ठग सम यह संसार ।
मीठे वचन उचारि के, मोह-फांसी [4]गल डार ॥६॥
मोह भूत तोको लग्यो, करे न तनक विचार ।
ना माने तो परखिले, मतलब को संसार ॥७॥

---

१ पाप कर रहा है । २ खुशी । ३ हालत । ४ जंगले में ।

काया ऊपर थांहरे, सब सूं अधिकी प्रीत ।
या तो पहले सबन में, देगी दगो [१]नचीत ॥८॥
विषय दुखन को सुख गिने, कहुं कहां लगि भूल ।
आंख छतां अंधा हुआ जाणपणा में धूल ॥९॥
नित प्रति दीखत ही रहे, उदै अस्त गति [२]भान ।
[३]अजहुं न ज्ञान भयो कछु, तू तो बडो अजाण॥१०॥
किसके कहे निश्चिंत तू, सिर पर फिरे जुकाल ।
बांधे है तो बावले, पानि पहिले पाल ॥११॥
आया सो सब ही गया, अवतारादि विशेष ।
तू भी यों ही जायगा, इण में मीन न मेख ॥१२॥
यो अवसर फिर ना मिलै, अपनो मतलब सार ।
[४]चुकते दाम चुकाय दे, अब मत राख उधार ॥१३॥
कैसे गाफिल हो रहा, निबडा आ तकरार ।
निपजी खेती देय क्यों वाटी साटे गंवार ॥१४॥
धर्म [५]विहार कियो नहीं, कीनो विषय विहार ।
गांठ खाय रीते चले, आके जग हटवार ॥१५॥
काज करत पर घरन के, अपना काज विगार ।
शीत निवारे जगत की, अपनी [६]झुंपरो बार ॥१६॥

---

१. निश्चित, अवश्य । २ सूर्य । ३ आज तक । ४ पहले के चुकाय नये मत बांधो । ५ प्रवृत्ति । ६ आत्म हित शिवाय शरीर, भोग, परिवार, मान-पूजा आदि की रक्षा व संसार की सब प्रवृत्ति आत्मिक-सुख-रूपी महल जलाकर पर को शांति करने तुल्य ठंड दूर करने बराबर है ।

नहिं विचार तैंने किया, करना था क्या काज।
उदै होयगा कर्म फल, तब उपजेगी लाज ॥१७॥
झूठे संसारीन की, छूटेगी जब [१]लाज।
इनसों अलग होयगा, तब सुधरेगा काज ॥१८॥
अपनी पूँजि सू करी, निश्चल कार विहार।
बांध्या सो ही भोगले, मति कर और उधार ॥१९॥
नया कर्म ऋण काढि के, करसी कार बिहार।
देणा पडसी पार का, किम होसी छुटकार ॥२०॥
विषय भोग किंपाक सम, [२]लखि दुख फल परिणाम।
जब [३]विरक्त तू होयगा, तब सुधरेगा काम ॥२१।
येरे मन मेरे पथिक, तू न जाव वहं ठोर।
बटमारा [४]पांचू जहां, करें साह कूं चोर ॥२२॥
आरंभ विषय कषाय कूं, कीनी बहुत ही बार।
कछु कारज सरिया नहीं, उलटा हुवा खुवार ॥२३॥
चारू सज्ञा में सदा, सुते निपुन चित लाग।
गुरु समझावे कठिनसूं, उपजे तउ न विराग ॥२४॥
खैर हुवा जो कुछ हुवा, अब करनो नहिं जोग।
बिना बिचारें तै किया, ताको ही फल भोग ॥२५॥

---

१ बधन, शर्म। २ देखकर। ३ वैराग्य पूर्वक त्यागी ४ पांच इन्द्रिय।

॥ मेरी भावना ॥



(जीवन सुधार नित्य पाठ)

जिसने रागद्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया,
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया ।
बुद्ध, वीर जिन, हरि, हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो॥ १
विषयों की आशा नही जिनके साम्य-भाव धन रखते है,
निज-परके हित-साधनमें जो, निशदिन तत्पर रहते है
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, विनाखेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं ॥२॥
रहे सदा सत्संग उन्हीका, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे,।
उनही जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे ।
नही सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी नही कहा करूं,
पर धन-वनिता पर न लुभाऊं, संतोषामृत पिया करूं ॥ ३
अहंकार का भाव न रक्खूं, नही किसी पर क्रोध करूं
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्षा भाव धरूं, ।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करुं,
बने जहां तक इस जीवन में, औरों का उपकार करुं ॥४॥
मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे,
दीन दुःखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे ।

दुर्जन-क्रूर-कुमार्गरतों पर क्षोभ नही मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूं मै उन पर, ऐसो परिणति हो जावे ॥ ।
गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड आवे,
बनें जहां तक उनकी सेवा, करके मन यह सुख पावे ।
होऊं नही कृतघ्न कभी मै, द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहण के भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥६॥
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखो वर्षो तक जीऊं या, मृत्यु आजही आजावे ।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे,
तो भी न्यायमार्ग से मेरा कभी न पग डिगने पावे ॥७॥
होकर सुख मे मग्न न फूले, दुख में कभी न घबरावे,
पर्वत-नदी-श्मशान-भयानक अटवी से नही भय खावे ।
रहे अडोल-अकंप निरंतर, यह मन दृढ़तर बन जावे
इष्टवियोग-अनिष्टयोग में, सहनशीलता दिखलावे ॥८॥
सुखी रहे सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे,
वैर-पाप-अभिमान छोड जग, नित्य नये मंगल गावे ।
घर घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर होजावें,
ज्ञान-चरित्र उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें।९।
ईति-भीति व्यापे नही जग मे वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे ।
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शांति से जिया करे,
परम अहिंसा-धर्म जगत मे, फैल सर्व हित किया करे ।१०।

ईति प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर पर रहाकरे,
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहीं, कोइ मुख से कहा करे।
बन कर सब 'युग-वीर' हृदय से देशोन्नति रत रहा करें,
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करें।११

सामायिक पाठ



नित देव ! मेरी आतमा धारण करे इस नेमको,
मैत्री करे सब प्राणियों से, गुणिजनोंसे प्रेमको।
उनपर दया करती रहे जो दुःख-ग्राह ग्रहीत है,
उनसे उदासीसी रहे जो धर्मके विपरीत है ॥१॥
करके कृपा कुछ शक्ति ऐसी दीजिए मुझमें प्रभो,
तलवारका ज्यो म्यान से करते विलग है हे विभो।
गतदोप आत्मा शक्तिशाली है मिली मम अंगसे,
उसको विलग उस भांति करने के लिए ऋजु ढंगसे।२।
हे नाथ ! मेरे चित्तमे समता सदा भरपूर हो,
सम्पूर्ण ममताकी कुमति मेरे हृदय से दूर हो।
वनमे, भवनमे, दुःखमें, सुख मे नही कुछ भेद हो,
अरि मित्रमें, मिलने-विछुडने मे न हर्प न खेद हो।३।
अतिशय घनी तम-राशिको दीपक हटाते है यथा,
दोनों कमल-पद आपके अज्ञान-तम हरते तथा।

प्रतिबिम्बसम स्थिररूप वे मेरे हृदयमें लीन हों,
मुनिनाथ ! कीलित-तुल्य वे उर पर सदा आसीन हों ।४।

यदि एक इन्द्रिय आदि देहो घूमते फिरते महो,
जिनदेव ! मेरी भूलसे पीडित हुए होंवे कहीं ।
टुकडे हुए हो, मल गये हों चोट खाये हों कभी,
तो नाथ ! वे दुष्टाचरण मेरे बनें झूठे सभी ॥५।

सन्मुक्तिके सन्मार्गसे प्रतिकूल पथ मैंने लिया,
पन्चेन्द्रियों चारों कषायोमें स्वमन मैंने दिया ।
इस हेतु शुद्ध चरित्रका जो लोप मुझसे हो गया,
दुष्कर्म वह मिथ्यात्वको हो प्राप्त प्रभु ! करिए दया ।६।

चारो कषायोसे, वचन, मन, कायसे जो पाप है—
मुझसे हुआ, हे नाथ वह कारण हुआ भव ताप है ।
अब मारता हू मै उसे आलोचना-निन्दादिसे,
ज्यों सकल विषको वैद्यवर है मारता मन्त्रादिसे ॥७॥

जिन देव ! शुद्ध चरित्रका मुझसे अतिक्रम जो हुआ,
अज्ञान और प्रमादसे व्रतका व्यतिक्रम जो हुआ ।
अतिचार और अनाचरण जो जो हुए मुझसे प्रभो !
सबको मलिनता मेटने को प्रतिक्रम करता विभो ॥८॥

मनकी विमलता नष्ट होनेको अतिक्रम है कहा,
औ शीलचर्याके विलघनको व्यतिक्रम है कहा ।
हे नाथ ! विषयोंमे लिपटनेको कहा अतिचार है,
आसक्त अतिशय विषयमें रहना महाऽनाचार है ॥९।

यदि अर्थ, मात्रा, वाक्यमें पदमें पडो त्रुटी हो कहीं,
तो भूलसे ही वह हुई, मैने उसे जाना नही ।
जिनदेववाणो ! तो क्षमा उसको तुरत कर दोजिए,
मेरे हृदयमें देवि ! केवलज्ञानको भर दीजिए ।१०
हे देवि ! तेरी वन्दना मै कर रहा हूं इस लिए,
चिन्तामणिप्रभ है सभी वरदान देनेके लिए ।
परिणामशुद्धि, समाधि मुझमें बोधिका सचार हो,
हो प्राप्ति स्वात्माकी तथा शिवसौख्यकी, भव पार हो
मुनिनायकोंके वृन्द जिसको स्मरण करते है सदा,
जिसका सभी नर अमरपति भी स्तवन करते है सदा ।
सच्छास्त्र वेद-पुराण जिसको सर्वदा है गा रहे,
वह देवका भो देव बस मेरे हृदयमें आ रहे ।१२।
जो अन्तरहित सुबोध-दर्शन और सौख्यस्वरूप है,
जो सव विकारोंसे रहित, जिससे अलग भवकूप है ।
मिलता बिना न समाधि जो, परमात्मा जिसका नाम है,
देवेश वह उर आ बसे मेरा खुला हृद्धाम है ।१३।
जो काट देता है जगतके दुःखनिर्मित जालको ।
जो देख लेता है जगत की भीतरी भी चालको ।
योगी जिसे है देख सकते, अन्तरात्मा जो स्वयम,
देवेश वह मेरे हृदय-पुकार निवासी हो स्वयम् ।१४।
कैवल्यके सन्मार्गको दिखला रहा है जो हमें,
जो जनमके या मरणके पडता न दुखसन्दोहमे ।

अशरीर हो त्रैलोक्यदर्शी दूर है कुकलंकसे,
देवेश वह आकर लगे मेरे हृदय के अंकसे ॥१५॥
अपना लिया है निखिल तनुधारी निबहने हो जिसे,
रागादि दोष–व्यूह भी छू तक नही सकता जिसे।
जो ज्ञानमय है, नित्य है, सर्वेन्द्रियोंसे हीन है,
जिनदेव देवेश्वर वही मेरे हृदयमें लीन है ॥१६॥
संसारकी सब वस्तुओंमें ज्ञान जिसका व्याप्त है,
जो कर्म-बन्धन-हीन, बुद्ध, विशुद्ध, सिद्धिप्राप्त है।
जो ध्यान करनेसे मिटा देता सकल कुविकारको,
देवेश वह शोभित करे मेरे हृदय-आगारको ॥१७॥
तम–संघ जैसे सूर्य–किरणोंको न छू सकता कहीं,
उस भांति कर्म–कलंक दोषाकर जिसे छूता नहीं।
जो है निरंजन वस्त्वपेक्षा, नित्य भी है, एक है,
उस आप्त प्रभुकी शरणमें हूं प्राप्त, जोकि अनेक है॥१८॥
यह दिवसनायक लोकका जिसमें कभी रहता नहीं,
त्रैलोक्य-भासक ज्ञान रवि पर है वहां रहता सही।
जो देव स्वात्मामे सदा स्थिर रूपताको प्राप्त है,
मै हूं उसीकी शरणमें, जो देववर है, आप्त है ॥१९॥
अवलोकने पर ज्ञानमें जिसके सकल संसार ही–
है स्पष्ट दिखता, एकसे है दूसरा मिलकर नहीं।
जो शुद्ध, शिव है, शान्त भी है, नित्यताको प्राप्त है,
उसकी शरणको प्राप्त हूं, जो देववर है, आप्त है।२०॥

वृक्षावली जैसे अनलकी लपट से रहती नहीं,
त्यों शोक, मन्मथ, मानको रहने दिया जिसने नहीं।
भय, मोह, नींद, विषाद, चिन्ता भी न जिसको व्याप्त है,
उसकी शरण में हूं गिरा, जो देववर है आप्त है।२१॥
विधिवत शुभासन घासका या भूमिका बनता नहीं,
चौकी, शिलाको ही शुभासन मानती बुधता नहीं।
जिससे कषायारीन्द्रियां खटपट मचाती हैं नहीं,
आसन सुधी जनके लिए है आत्मा निर्मल वही। २२।
हे भद्र! आसन, लोक पूजा, संघकी संगति तथा,
ये सब समाधिके न साधन वास्तविकमे हैं प्रथा।
सम्पूर्ण बाहर-वासनाको इस लिए तू छोड़ दे,
अध्यात्ममें तू हरघड़ी होकर निरत रति जोड़दे। २३।
जो बाहरी हैं वस्तुयें, वे है नहीं मेरी कहीं,
उस भांति हो सकता कहीं उनका कभी मै भी नहीं।
यों समझ बाह्याडम्बरोंको, छोड़ निश्चित-रूपसे,
हे भद्र! होजा स्वस्थ तू बच जायगा भवकूपसे।२४।
निजको निजात्मा-मध्यमें ही सम्यगवलोकन करे,
तू दर्शन-प्रज्ञानमय है, शुद्धसे भी है परे।
एकाग्र जिसका चित्त हैं, तू सत्य इसको मानना,
चाहे कहीं भी हो, समाधिप्राप्त उसको जानना॥२५॥
मेरी अकेली आत्मा परिवर्तनोंसे हीन है।
अतिशय विनिर्मल है सदा सद्भावमें ही लीन है।

जो अन्य सब हैं वस्तुयें वे ऊपरी ही है सभी,
निज कर्मसे उत्पन्न हैं अविनाशिता क्यों हो कभी॥२६।
है एकता जब देहके भी साथमे जिसकी नहीं,
पुत्रादिकोंके साथ उसका ऐक्य फिर क्यों हो कहीं।
जब अंग-भरसे मनुजके चमड़ा अलग हो जायगा,
तो रोंगटों का छिद्रगण कैसे नहीं खो जायगा॥२७।
संसाररूपी गहनमें है जीव बहु दुख भोगता,
वह बाहरी सब वस्तुओं के साथ कर संयोगता।
यदि मुक्तिकी है चाह तो फिर जीवगण! सुन लीजिए,
मनसे, वचनसे, कायसे उसको अलग कर दीजिए॥२८।
देही! विकल्पित जालको तू दूरदे शीघ्र ही,
संसार-वनमें डालने का मुख्य कारण है यही।
तू सर्वदा सबसे अलग निज आत्माका देखना,
परमातमाके तत्व में तू लीन निजको लेखना॥२९॥
पहले समयमें आतमाने कर्म हैं जैसे किए,
वैसे शुभाशुभ फल यहांपर सांप्रतिक उसने लिए।
यदि दूसरेके कर्म का फल जीवको होजाय तो,
हे जीवगण! फिर सफलता निज कर्मकी खोजायतो॥३०।
'अपने उपार्जित कर्म-फलको जीव पाते हैं सभी,
उसके सिवा कोई किसीको कुछ नहीं देता कभी।
ऐसा समझना चाहिए एकाग्र मन होकर सदा,
'दाता अपर है भोगका' इस बुद्धिको खोकर सदा॥३१।

सबसे अलग परमात्मा है, अमितगतिसे वन्द्य है,
हे जीवगण! वह सर्वदा सब भांति ही अनवद्य है।
मनसे उसी परमातमाको ध्यानमें जो लायगा,
व श्रेष्ठ लक्ष्मीके निकेतन मुक्ति-पदको पायगा ॥३२।
पढकर इन द्वात्रिंश पद्यको, लखता जो परमात्मवन्द्यको।
वह अनन्यमन हो जाता है, मोक्ष-निकेतनको पाता है॥३॥

रत्नाकर पंचविंशतिका



शुभकेलिके आनंदके धनके मनोहर धाम हो,
नरनाथसे सुरनाथ से पूजित चरण गतकाम हो।
सर्वज्ञ हो सर्वोच्च हो सबसे सदा संसारमें,
प्रज्ञा कलाके सिंधु हो आदर्श हो आचारके ॥१॥
संसार-दुख के वैद्य हो त्रैलोक्य के आधार हो,
जय श्रीश! रत्नाकरप्रभो! अनुपम कृपा-अवतार हो
गतराग! है विज्ञप्ति मेरी मुग्धकी सुन लीजिए,
क्योंकि प्रभो! तुम विज्ञहो, मुझको अभयवर दोजिए॥२॥
माता पिताके सामने बोली सुनाकर तोतली,
करता नहीं क्या अज्ञबालक बाल्य-वश लीलावली?
अपने हृदयके हालको त्योंही यथोचित रीतिसे
मैं कह रहा हूं आपके आगे विनयसे प्रीतिसे ॥३॥

मैने नहीं जगमें कभी कुछ दान दीनों को दिया,
मैं सच्चरित भी हूं नहीं, मैंने नहीं तप भी किया।
शुभ भावनाएं भी हुई, अब तक न इस संसार में,
मैं घूमता हूं, व्यर्थ ही भ्रमसे भवोदधि-धारमें। ४॥
क्रोधाग्निसे मै रातदिन हा! जलरहा हूं हे प्रभो,
मैं लोभ नामक सांपसे काटा गया हूं हे प्रभो।
अभिमानके खल ग्राहसे अज्ञानवश मैं ग्रस्त हूं,
किस भांति हों स्मृत आप, माया-जालसे मै व्यस्त हूं॥५॥
लोकेश परहित भी किया मैंने न दोनों लोकमें,
सुख लेश भी फिर क्यों मुझे हो, झीकता हूं शोक में
जगमे हमारे से नरों का जन्म ही बस व्यर्थ है,
मानों जिनेश्वर! वह भवोंकी पूर्णता के अर्थ है॥६॥
प्रभु! आपने निजमुख-सुधाका दान यद्यपि देदिया,
यह ठीक है, पर चित्तने उसका न कुछभी फल लिया
आनंदरसमे डूबकर सद्वृत वह होता नही,
है वज्रसा मेरा हृदय, कारण बड़ा बस है यही॥७॥
रत्नत्रयी दुष्प्राप्य है प्रभुसे उसे मैने लिया,
बहुकाल तक बहुवार जब जगका भ्रमण मैने किया।
हा! खोगया वह भी विवश मैं नीद आलसके रहा,
अब बोलिए उसके लिए रोऊं प्रभो किसके यहां॥८॥
संसार ठगनेके लिए वैराग्य को धारण किया,
जगको रिझानेके लिए उपदेश धर्मोका दिया।

झगडा मचानेके लिए मम जीभ पर विद्या बसी,
निर्लज्ज हो कितनी उडाऊं हे प्रभो! अपनी हंसी॥६॥
परदोपको कह कर सदा मेरा वदन दूपित हुआ,
लख कर पराई नारियोंको हा! नयन दूषित हुआ॥
मन भी मलिन है सोचकर परकी वुराई, हे प्रभो,
किस भांति होगी लोकमें मेरी भलाई, हे प्रभो।१०॥
मैंने वढाई निज विवशता हो अवस्थाके वशी,
भक्षक रतीश्वर से हुई उत्पन्न जा दुःख-राक्षसी।
हा! आपके सन्मुख उसे अतिलाजसे प्रकटित किया,
सर्वज्ञ! हो सव जानते स्वयमेव संसृतिकी क्रिया।११।
अन्यान्य मंत्रों से परम परमोष्ठि-मंत्र हटा दिया,
सच्छास्त्रवाक्योंको कुशास्त्रोंसे दवा मैंने दिया।
विधि उदयको करने वृथा मैंने कुदेवाश्रय लिया।
हे नाथ यों भ्रमवश अहित मैंने नही क्या२किया।१२॥
हा तज दिया मैंने प्रभो! प्रत्यक्ष पाकर आपको,
अज्ञानवश मैंने किया फिर देखिए किस पापको।
वामाक्षियोंके कुचकटाक्षोपर सदा मरता रहा,
उनके विलासोंके हृदयमे ध्यानको करता रहा॥१३।
लखकर चपलदृगयुवतियोंके मुख मनोहर रसमई,
जो मन-पटलपर रागभावोंकी मलिनता वसगई।
वह शास्त्रनिधिके शुद्ध जलसे भी न क्यों धोईगई,
वतलाइए यह आपही मम वुद्धि तो खोईगई॥१४॥

मुझमें न अपने अंगके सौदर्य्यका आभास है,
मुझमें न गुणगण है विमल न कलाकलापविलास है
प्रभुता न मुझमें स्वप्नको भी चमकती है देखिए,
तो भी भरा हूं गर्वसे मै मूढ हो किसके लिए॥१५॥

हा नित्य घटती आयु है पर पापमति घटती नहीं,
आई बुढौती पर विषयसे कामना हटती नही।
मैं यत्न करता हूँ दवामें, धर्म में करता नहीं,
दुमोह-महिमासे ग्रसित हूँ नाथ! बचसकता नहीं॥१६

अध, पुण्यको, भव, आत्माको मैने कभी माना नही,
हा! आप आगे हैं खडे दिननाथसे यद्यपि यही।
तो भी खलोंके वाक्यों को मैने सुना कानों वृथा,
धिक्कार मुझको है, गया ममजन्म ही मानों वृथा॥१७

सत्पात्र-पूजन देव-पूजन कुछ नही मैने किया,
मुनिधर्म श्रावकधर्मका भी नहि सविधि पालन किया।
नरजन्म पाकर भी वृथा ही मै उसे खोता रहा,
मानो अकेला घोर वनमें व्यर्थ ही रोता रहा॥१८॥

प्रत्यक्ष सुखकर जैनमतमें प्रीति मेरी थी नहीं,
जिननाथ! मेरी देखिये है मूढता भारी यही।
हा! कामधुक कल्पद्रुमादिकके यहां रहते हुए,
हमने गंवाया जन्मको धिक्कार दुख रहते हुए।१९॥

मैने न रोका रोग-दुख सभोग-सुख देखा किया,
मनमे न माना मृत्यु-भय धन-लाभ ही लेखा किया।
हा! मै अधम युवतीजनोंके ध्यान नित करता रहा,
पर नरक-कारागारसे मनमें न मैं डरता रहा॥२०॥

सद्वृत्तिसे मनमें न मैंने साधुता हा साधिता,
उपकार करके कीर्ति भी मैंने नहीं कुछ अर्जिता।
शुभ तीर्थके उद्धार आदिक कार्य कर पाये नहीं,
नर-जन्म पारस-तुल्य निज मैंने गवाया व्यर्थ ही २१।
शास्त्रोक्त विधि वैराग्य भी करना मुझे आता नहीं,
खल-वाक्य भी गतक्रोध हो सहना मुझे आता नहीं।
अध्यात्म-विद्या है न मुझमें है न कोई सत्कला,
फिर देव! कैसे यह भवोदधि पार होवेगा भला?।२२।
सत्कर्म पहले जन्ममें मैंने किया कोई नहीं,
आशा नहीं जन्मान्यमें उसको करूंगा मैं कहीं।
इस भांतिका यदि हूं जिनेश्वर! क्यों न मुझको कष्ट हों?
संसारमें फिर जन्म तीनों क्यों न मेरे नष्ट हों?।२३।
हे पूज्य! अपने चरितको बहुभांति गाऊं क्या वृथा,
कुछ भी नहीं तुमसे छिपी है पापमय मेरी कथा।
क्योंकि त्रिजगके रूप हो तुम, ईश हो, सर्वज्ञ हो,
पथके प्रदर्शक हो, तुम्ही मम चित्तके मर्मज्ञ हो।२४।
दीनोद्धारक धीर आप सा अन्य नहीं है,
कृपा-पात्र भी नाथ! न मुझसा अपर कहीं है।
तो भी मांगूं नहीं धान्य धन कभी भूलकर,
अर्हन्! केवल बोधिरत्न होवे मंगलकर ॥२५॥
श्रीरत्नाकर गुणगान यह दुरित दुःख सबके हरे।
बस एक यही है प्रार्थना मंगलमय जगको करे ॥

---

* ॐ *

समाधि-मरण की भावना

याने

परलोक-प्रकाश



१. अहो! अति आश्चर्य है कि अनन्त परमाणु पुद्गलों का समूह मिलकर यह शरीर-पिण्ड निर्माण हुआ था, और देखते २ ही यह नष्ट होने लगा, देखिये यह पुद्गलो की कैसी विचित्रता है।

२. अहो जिनेन्द्र भगवन! आपने कहा है कि— "अधुव असासयंमि" अर्थात् यह पुद्गल पिण्ड (शरीर) अध्रुव (अस्थिर) और अशाश्वत (अनित्य) है, इस कथन का इतने दिन तो मैने विचार नहीं किया, किन्तु अब शरीर की यह विनाशमयी रचना देखकर मुझे निश्चय हो गया है कि आपका कथन पूर्णांश में सत्य है।

३ जिस प्रकार मनुष्यों के समूह के मिलने से मेला कहलाता है, वह कालान्तर में बिखर जाने से शून्यारण्य होजाता है इसी प्रकार कुटुम्बों के सम्बन्ध से संसार रूपी मेला बना है, इसका भी बिखरने का स्वभाव है, जैसे

मेले में उपस्थित प्रेक्षक मेला बिखरने की फिक्र नही करते हैं. वैसे ही मैं (चैतन्य) भी प्रेक्षक हूं. मुझे भी इस शरीर पर्याय के छूटने का फिक्र नहीं है।

४ जगत् का कर्ता हर्ता कोई भी नही है. सभी पदार्थ स्वभाव से ही मिलते है और स्वभाव से ही बिखरते हैं. तैसे ही इस शरीर का भी संयोग स्वभाव से ही मिलता है और स्वभाव से ही बिखरता है. मेरे रखने से रहता नहीं है और बिखेरने से बिखरता नहीं है तो फिर इसके वियोग का फिक्र मुझे क्यों करना चाहिये? अपितु किन्चित् मात्र भी नहीं करना चाहिये! होना होगा सोही होवेगा!!

५ मैं (चैतन्य) ज्ञायक स्वभाव का कर्ता भोक्ता अनुभविक और ज्ञान स्वरुप हूं, वह ज्ञायक स्वभाव अविनाशी है और शरीर नाशवान है, शरीर का नाश होते भी मेरे स्वभाव का नाश नहीं होता है, इसलिये मुझे शरीर का फिक्र करना अनुचित है।

६ अहो जिनेन्द्र! इतने दिन इस शरीर को 'मैं' मेरा मानता था, किन्तु अब मुझे सत्य का आभास हुआ कि यह मेरी अज्ञानता है, क्योंकि यह शरीर मेरी इच्छा बिना ही मेरे कट्टर शत्रु जो रोग और वृद्धावस्था हैं उनसे मिल-गया, तथा मृत्यु से भी मिलने को तैयार हो गया है, जो मेरा होता तो मेरे शत्रुओं

से मिलकर मुझे दुःखी करने को क्यों तैयार होता ? ऐसे स्वामिद्रोही को मेरा मानना मुझे उचित नहीं है, इसलिये अब यह मेरा नहीं है, अब यह रहो चाहे जावो।

७ रे भोले जीव ! इस शरीर को-माता-पिता मेरा पुत्र कहते है, भ्राता-भगिनि मेरा भाई कहते है, काका-काकी मेरा भतीजा कहते हैं, मामा मामी मेरा भानजा कहते है, स्त्री मेरा पति कहती है, पुत्र-पुत्री मेरा पिता कहते है इत्यादि सब अपना २ कहते हैं और तू तेरा मानता है, अब यह शरीर किस २ का है ? परमार्थ से देखो तो किसी का भी नहीं है, क्योंकि इसे कोई भी रखने में समर्थ नहीं है, इसलिये सब कुटुम्बियों से ममत्व भाव का परित्याग कर, अलग होकर निश्चयात्मक किन्तु सच्चिदात्मक है, इसलिये अब निज स्वभाव में रमण करना उचित है।

८ हे, आत्मन् ! यह शरीर संपदा इंद्रजाल की माया के समान है।

श्लोकः-बोलो यौवन सम्पदा परिगत : क्षिप्र क्षितो लक्षते।
मृद्धत्वेन युवा जरा परिणतौ व्यक्त समोलोक्यते ।।
सोऽपि क्कपिगत : कृतान्तवश्तो न ज्ञायते सर्वथा।
पश्यैतद्यदि कौतुक किमपरैस्तैरिन्द्रजालैस्सखे ।। १ ।।

—वैराग्य शतक

अर्थ—अरे मित्र! काल के वशीभूत हुआ २ यह शरीर इन्द्रजाल के समान क्षण २ में परिवर्तित होता है इसका जरा अवलोकन कर। बाल्यवस्था में यह शरीर सबको प्यारा लगता है। फिर शनैः २ पुद्गलों का प्रादुर्भाव होते २ युवावस्था में प्रवेश कर यह मनोहारी बन जाता है और स्त्री-पुरुषों के मनों को हरने लग जाता है, इसी प्रकार परिवर्तित होते २ वृद्धावस्था को प्राप्त हो यही शरीर गलित पलित होकर घृणा का सदन बन जाता है। जो इसे प्यार करते थे उन्हीं को यह बुरा लगने लग जाता है; यहां तक कि अपने पालक को भी यह ग्लानि पैदा करने लगता है। अन्तमे मृत्यु का ग्रास बनकर मुर्दा बन जाता है। उस समय वेही स्वजन तत्काल इसका मोह छोडकर इसे अग्नि में भस्म कर डालते है। ऐसी इस शरीर और कुटुंबियों की हालत देखता हुआ और जानता हुआ भी इसके और कुटुंबियों के मोह का परित्याग नहीं करता है यह बड़े ही खेद और आश्चर्य की बात है।

९. जो जीता है वह मरता नही है और जो मरता है वह जीवित नहीं रहता है। अर्थात् आत्मा अविनाशी है और शरीर विनाशी है। इसलिये मृत्यु शरीर का ग्रास कर सकती है न कि आत्मा का। जब से शरीर उत्पन्न हुआ है तभी से प्रतिक्षण क्षीण हो रहा है। किन्तु मैं (आत्मा) तो जैसा था वैसा ही बना हुआ हूं और

वैसा ही बना रहूंगा । मुझे मृत्यु प्राप्त हुई नहीं, होती नहीं और होगी भी नहीं ऐसे निश्चयवाले जो हैं उन्हें मृत्यु का भय कदापि नही होता है ।

१० मै आकाशवत् हू; इसलिये अग्नि से जलता नहीं हू, पानी से गलता नही हूं, वायु से उडता नहीं हूं, हस्तादि से ग्रहण किया जाता नहीं हूं और नाश को भी प्राप्त नहीं होता हू । विशेषता यह है कि आकाश अचैतन्य अमूर्त है और मैं सचैतन्य अमूर्त होने से अधिक सत्तावान् हू । इसलिये मुझे किसी से भी कभी भय प्राप्त होता ही नही है ।

११ जैसे श्रीमान् के पुत्र को दोनों तरफ को जेबों मे मेवा भरा हुआ होने से वह जिधर भी हाथ डालता है उधर स्वादिष्ट पदार्थ उसके हाथ लगता है वैसेही मेरे भी दोनो हाथों मे मेवा है । अर्थात् जीता हू तब तक संयम पालता हूं या श्रावक के व्रत पालता हू और मर गया तो स्वर्ग मोक्ष के सुखों का भोक्ता बनूंगा; महाविदेह क्षेत्र में सीमंधर स्वामी आदि तीर्थंकरो के, गणधरों के, साधु-साध्वियों के दर्शनों का लाभ प्राप्त करूंगा, धर्मोपदेश श्रवण करूंगा, प्रश्नोत्तरों द्वारा संशय का उच्छेद तत्वज्ञ बनूंगा, जिससे रागद्वेष का उच्छेद करने मे समर्थ बनूंगा और फिर मनुष्य जन्म को प्राप्त कर सयम-तपादि से कर्मो का क्षय करके मोक्ष प्राप्त करूंगा ।

१२. जैसे कोई गृहस्थ श्रीमान् बनने पर टूटे फूटे पुराने घरका परित्याग करने के लिये बहुतसा द्रव्य व्यय करके मनोहर हवेली बनवाता है और वह तैयार होने पर तुरंत ही बडे हर्षपूर्वक और उत्सव सहित पुराने मकान का परित्याग कर नई हवेली में निवास करता है वैसे ही मेरा यह आत्मा जो संयम तपादि रूपी सद्द्रव्य से श्रीमान् बना है इस आधि-व्याधि-उपाधि से परिपूरित, अस्थि मांस-चर्ममय और सडन-गलनादि स्वभाववाले औदारिक शरीर रूपी झोंपडी का परित्याग करने के लिये पुण्यरूपी द्रव्य के व्यय से बनी हुई मनोवांछित रूपके कर्ता, आधि-व्याधि-उपाधि रहित, दिव्य देवता के शरीर रूपी हवेली में निवास करने वाला है। उसे वहां पर पहुंचाने के लिये मृत्युरूपी सहायक प्राप्त हुआ है। इसलिये देव-लोक रूपी हवेली में निवास करने के लिये हर्षोत्साह-पूर्वक इस झोंपडी का परित्याग करना चाहिये। झोंपडी छूटी और हवेली मिली। सिर्फ झोंपडी छूटने मात्र की ही देर है।

१३. जैसे लोभी वाणिक् क्षुधा, तृषा, शीत, ताप आदि अनेक कष्ट सहन कर अनेक देशों में भ्रमण कर धन-मालादि का संग्रह करता है और उन्हें भंडारादि में बहुत हिफाजत के साथ रखता है तथा तेजी की प्रतीक्षा करता है। तेज भाव आतेही उस अतिकष्ट से संग्रहित

और रक्षित माल का ममत्व सहसा परित्याग कर उसे बेच देता है और लाभ प्राप्त करलेता है। उसी प्रकार हे जीव! प्राणप्यारे धन कुटुंबका परित्याग कर, क्षुधा-तृषा, शीत-ताप-उग्रविहारादि अनेक कष्ट सहकर इस शरीर से तप-संयम-धर्मरूप जो माल संग्रहित किया है और उसे दोषों से बचाकर रखा है उस संग्रहित माल के बदले में अब स्वर्ग-मोक्षरूप लाभ प्राप्त करने के लिए मृत्यु-रूप यह तेज भाव आया है। इसलिये अब इस शरीर के ममत्व का परित्याग कर मोक्ष तथा स्वर्ग रूपी लाभ प्राप्त करले।

१४. जैसे दिनभर की हुई मजदूरी का फल सेठ देता है उसी प्रकार जन्मभर की हुई करनी का फल मृत्युरूप सेठ से प्राप्त होता है। इसलिये अब करनी का फल प्राप्त करने में इन्कार क्यों करना चाहिये। यह मृत्युरूप जो सेठजी आए हैं उनसे सादर और साभार करनी का फल प्राप्त करलेना चाहिये।

१५. जैसे किसी राजा को किसी परचक्री राजा ने पकडकर कारागृह में या कठपिंजर में कैद करदिया और वह उसे क्षुधा, तृषा, ताडन, तर्जनादि दुःखों से पीडित करने लगा। यह समाचार मिलने पर उसका कोई मित्र-राजा दलबल लेकर आता है और उसे कारागृह अथवा कठपिंजर से मुक्त कर सुखी करता है उसी प्रकार कर्मरूपी

शत्रु राजाने चैतन्य राजा को, संसार कारागृह में तथा शरीररूपी पिंजर में कैद कर रखा है और रोग-शोक वियोग पराधीनतादि नाना प्रकार के दुःखों से पीडित कर रहा है मृत्युरूपी मित्रराजा रोगादि रूपी सेनाओं से सज्ज होकर मुझे इन दुःखों से विमुक्त कराने के लिये आया है। अतएव यह मेरा उपकारी है। इसीके प्रताप से इन सांसारिक या कार्मिक दुःखों से छुटकारा पाकर क्षणमात्र में मै परमानन्दी एवं परमसुखी बनजाऊंगा। ऐसे उत्साहप्रद भावों का भाते हुए समाधि मरण प्राप्त करे।

१६ भूत वर्तमान और भविष्य मे जिन्होंने स्वर्ग और मोक्ष के उत्तम सुखों को प्राप्त किये हैं, करते हैं और करेंगे सो सब समाधिमरण का ही प्रताप समझना चाहिये। क्योंकि समाधिमरण के बगैर स्वर्ग तथा मोक्ष के उत्तम सुख प्राप्त नहीं होते है। इसलिये हे सुखार्थी आत्मन्। तुझे भी समाधि मरण मरना उचित है।

१७ कल्पवृक्ष की छाया में बैठने पर शुभ अथवा अशुभ जैसी भी वाँच्छा की जाय उसी प्रकार का फल प्राप्त होता है। याने शुभ वाँच्छाका शुभ फल और अशुभ वांच्छाका अशुभ फल प्राप्त होता है वैसे ही यह मृत्यु भी कल्पवृक्ष के समान है। इसकी छाया मे बैठकर याने प्राणान्त के समय में जो विषय कषाय-मोह-ममत्वादि निकृष्ठ इच्छाएं करता है, वह नरक—तिर्यंचादि दुर्गतियो के दुःखो का भोक्ता बनता

है और जो समकित युक्त त्याग-वैराग्य-व्रत-नियम-सत्य शील-दया क्षमा आदि गुणों का आराधना सहित समाधि भाव धारण करता है वह स्वर्ग तथा मोक्ष के सुखों का भोक्ता बनता है। इसलिये मृत्युरूपी कल्पवृक्ष को प्राप्त कर शुद्ध तथा शुभ भाव रखना ही श्रेष्ठ है; जिससे आत्मा परमानंदी एवं परम सुखी होजाय।

१८ अशुचि पूरित फूटे हण्डे के समान सदैव स्वेद-श्लेष्म-मल-मूत्रादी अशुचियों को निर्झरित करनेवाले इस अपवित्र एवं जर्जरित औदारिक शरीर के फन्दे से छुडाकर अशरीरी (सिद्ध भगवान्) बनानेवाला तथा देवता के दिव्य शरीर को प्राप्त करानेवाला मृत्यु ही है। इसलिये मृत्यु का स्वागत करना परमोचित है।

१९. जिस प्रकार धर्मोपदेशक मुनि महात्मा अनेक नय-उपनय प्रत्यक्ष-परीक्ष-हेतु-दृष्टान्तादि द्वारा शरीर का स्वरूप समझाकर ममत्म कम कराते है उसी प्रकार मेरे शरीर में उत्पन्न हुआ यह रोग भी मुझे प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा उपदेश देता हे कि हें प्राणी! तू इस शरीर पर ममत्व क्यों करता है? यह शरीर तेरा नहीं है किन्तु मेरे स्वामी काल का भक्ष्य है। इसलिये इस पर ममता मत कर।

२० किंबहुना मुनिराज से भी अधिक असरकारक उपदेष्टा मुझे तो यह रोग मालूम होता है। क्योंकि जिस

शरीर को मैं प्राणों से भी प्यारा मानकर अनेक सुखो-पचारों से पोषित कर रहा था तथा उसके सुन्दर कोमलतादि गुणों से मुग्ध बन रहा था और उस पर का मेरा यह प्रेम मुनिराज के अनेक प्रकार के उपदेशों से भी छूटना मुश्किल था वही प्रेम, अनेक उपचार करने पर भी रोग के नष्ट नहीं होने से, सहज में ही नष्ट हो जाता है।

२१. रे जीव! यदि इस रोगोदय के दुःख से तू घबराता हो—यह रोग तुझे सचमुच ही बुरा मालूम देता होकर तुझे इसका अत्यन्त ही कंटीला आता हो—तो तू औषधि वाह्योपचार बिलकुल बंद करदे। यह रोग कर्माधीन होने से औषधादि वाह्योपचार में इसे मिटाने की सत्ता नहीं है। कदाचित् एक आध रोग कम पड़ भी जाय तो क्या हुआ? क्योंकि संख्यात, असंख्यात अथवा अनंत काल में इसका फिर उदय हो आता है। सब रोगों एवं उनकी अचूक चिकित्सा के ज्ञाता वैद्य-राजेंद्र श्री जिनेन्द्र भगवान् की बताई हुई परम औषधि समाधि-मृत्यु है। इसका सच्चे दिल से सेवन कर जिससे आधि-व्याधि-उपाधि रूपी सब दुःख समूल नष्ट होकर अनन्त—अक्षय- अजर—अमर—अव्याबाध मोक्ष के सुख प्राप्त होजायं।

२२ ज्यों ज्यों वेदनाओं का जोर प्रबल होता जाय त्यों त्यों तू भी अधिक खुश होता जा। क्योंकि ज्यों

ज्यों स्वर्ण को अधिकाधिक ताप लगता है त्यों त्यों वह अधिकाधिक स्वच्छ, शुद्ध एवं निर्मल होकर कुंदन बन जाता है। उसी प्रकार तीव्र वेदनीय दशा में सम परिणाम धारण करने से कठिन कर्मों का भी शीघ्र ही समूल नाश होजाता है और आत्मा रूपी स्वर्ण स्वच्छ, शुद्ध एव निर्मल होकर सिद्ध स्वरूप बन जाता है; अन्यथा देवता होने में तो किसी तरह को हरकत है ही नहीं।

२३. जिस प्रकार श्रीजगसुकुमारजी के मस्तक पर सोमल ब्राह्मण ने प्रज्वलित अंगारे रखे और उनकी महावेदना उन्होंने सहन की; स्कंदकजी ने अपने शरीर की चमडी भगिनीपति के नौकरो द्वारा उस्तरे से उतारी जाने की महावेदना सहन को; स्कंदजी के ५०० शिष्यों ने पालक प्रधान द्वारा घानी मे पिलवाये जाने की महा वेदना सही; याने ऐसे महापुरुषों ने तीव्र वेदना का उद्भव होने पर समभाव रखे तो उन्होने तत्काल ही मुक्ति प्राप्त करली। इसी प्रकार यदि तू भी समभाव रखेगा तो तेरा भी तत्काल ही आत्मकल्याण हो जावेगा। इसमें किंचिन्मात्र भी संशय नही है।

२४. रे प्राणी! तूने नरक में दस प्रकार को क्षेत्र महावेदना सहन की है; यमों की मार आदि महाकष्ट सहन किये है, तिर्यग् योनि मे क्षुधा, तृषा, ताडना, परवशता आदि महा कष्ट उठाये हैं; मनुष्य भव में दरिद्रता,

पराधीनता सरीखे महान् कष्ट सहन किये हैं। देवगति में अभियोगिक देव बनकर वज्र प्रहार सरीखे, महान् कष्ट सहन किये है इस प्रकार अनादि काल से जो महा दुःख सहे वैसे कष्ट तो यहां नहीं है। फिर भी जितने कर्मों की निर्जरा अनंत काल के कष्ट सहने से नहीं हुई उतनी बल्कि उससे भी अनंत गुणी निर्जरा यहां इस प्रबल वेदना को समभाव से सहन करने में हो जायगी। और उक्त सब कष्टों से मुक्त होकर तू परमानंदी एवं परमसुखी बन जायगा।

२५. जैसे सांसारिक लेन देन के व्यवहार में यदि कोई कर्जदार अपने साहुकार को सौ रुपये के ऐवज में पिच्चानवे रुपये देकर नम्रता पूर्वक फारकती माँगे तो उसे वह देदेता है लेकिन धृष्टता करने पर सवाए दाम देने पर भी छूटकारा होना मुश्किल हो जाता है, उसी प्रकार यह वेदनीय-कर्म रूपी साहुकार अपना लेना चुकने आए है अतएव नम्रता पूर्वक इनका चुकादा करदे ताकि थोड़ेहो में तेरा छुटकारा होजाय।

२६ यह तो निश्चय ही समझ कि 'कड्डाण कम्माण न मोक्ख अत्थि' याने कृतकर्मो का बदला दिये बिना कदापि छुटकारा नही होता है। फिर देने को समर्थ होते हुए भी तू मुंह क्यों छिपाता है ? क्यों व्याज बढ़ाता शीघ्रही कुल कर्ज का चुकादा करके फारिग होजाना ही

बेहतर है; जिससे आगे कोई हरकत पहुंचाने वाला सामने नही आवे और तू सीधा मोक्ष में चला जावे।

२७ जिस प्रकार विचक्षण वणिक् अधिक मूल्यवान वस्तु को अल्प मूल्य में प्राप्त होती देख बड़े हर्षपूर्वक गुपचुप खरीद कर लेते है उसी प्रकार स्वर्ग मोक्ष के जो सुख मुनि महात्मा दुष्कर तप-संयम-ध्यान-मौनादि करनी द्वारा प्राप्त करते है वेही सुख केवल समाधिमृत्यु से ही प्राप्त हो जाते है। महामूल्य निर्वाण के सुख की प्राप्ति भी समाधि-मरणरूपी अल्पमूल्य में प्राप्त करने का यह अत्युत्तम अवसर प्राप्त हुआ है। इसलिये अब किसी भी प्रकार की आनाकानी न करते व्यवहार में गुपचुप (मौनस्थ) रहकर और निश्चय में समाधि भाव धारणकर झटपट प्राप्त करले।

२८ सुभट जिस प्रकार धनुर्विद्यादि का अभ्यास कर, और उन्हें साधनों द्वारा सिद्ध करके सुसज्जित रहते है और प्रसंग प्राप्त होनेपर उस सिद्ध की हुई विद्याद्वारा शत्रु का पराजय कर साध्य की हुई मिहनत को सफल करते हैं उसी प्रकार हे प्राणी! तूने इतने दिन तक जो ज्ञानाभ्यास तथा तप संयमादि का साधन किया है वह इसी अवसर पर आत्म कार्य सिद्ध करने के लिये ही किया है। वह अवसर अब प्राप्त हो गया है इसलिये अब सच्चे मन से रोग मृत्यु आदि शत्रुओं के सन्मुख होकर समभाव रखकर

इष्टितार्थ सिद्ध करले—कर्म शत्रुओं का पराजय करके सुखी होजा।

२९ जिससे विशेष परिचय होता है उससे स्वाभाविक रीति से ही प्रेम कम पड़ जाता है। उसी प्रकार इस शरीर का परिचय भी तुझे अनादि काल से है इसलिए इसपर का प्रेम भी अब कम होना चाहिये अर्थात् इस शरीर पर ममत्व नहीं रखना चाहिये।

३० वापरते २ जब वस्त्र जीर्ण हो जाते हैं तब उनपर का ममत्व त्यागकर नवीन वस्त्र हर्ष पूर्वक धारण करते हैं। उसी प्रकार यह औदारिक शरीर भी अनेक काम धंधो में तथा तप-संयम-विनय-वैयावच्च आदि मे वापरा जाकर रोगादि संयोगों के कारण जीर्ण हो गया है। अब इसका वियोग होकर दिव्य देवशरीर की प्राप्ति होने वाली है। अतएव इसका मोह भी कम करना चाहिये। पुराना वस्त्र उतारने पर ही नया वस्त्र धारण किया जाता है, वैसेही यह शरीर छूटने पर ही दिव्य देवशरीर की प्राप्ति होती है। अतएव उसे प्राप्त कर लीजिए।

— "जनतत्व प्रकाश" से साभार उधृत।

कर्म नाटक के दोहे-

कर्मन के नाटक नटत, जीव जगत के मांहि ।
उनके कुछ लक्षण कहूं जिन आगम की छांहि ॥१॥
तीन लोक नाटक भवन, मोह नचावन हार ।
नाचत है जिव स्वांगधर, कर कर नृत्य अपार ॥२॥
नाचत है जिव जगत मे,नाना स्वांग बनाय ।
देव नर्क तिरजंच अरु, मनुष्य गति में आय ॥३॥
स्वाग धरे जब देव को, मानता है निज देव ।
वही स्वांग नाचत रहे, ये अज्ञान की टेव ॥४॥
औरन को और हि कहै, आप कहै हम देव ।
धर के स्वांग शरीर का, नाचत है स्वयमेव ॥५॥
भये नरक में नारकी, करने लगे पुकार।
छेदन भेदन दुःख सहे, यहि नाच निरधार ॥ ६ ॥
मान आप को नारकी, त्राहि त्राहि नित होत ।
यह तो स्वांग निर्वांह है, भूल करो मत कोय ॥७॥
नित अधोगति निगोद है, तहां बसत जो हंस ।
वे सब स्वांग हि खेल के, विचित्र धर्यो यह वंश ॥८॥
उछर उछर के गिर पडे वे आवे इस ठौर ।
मिथ्यादृष्टि स्वभाव धर, यही स्वांग शिरमौर ॥९॥
कबहू पृथिवकाय में, कबहू अग्नि स्वरूप ।
कबहू पानी पवन में, नाचत स्वांग अनूप ॥१०॥
वनस्पति के भेद बहू, श्वास अठारह वार ।
तामें नाच्यों जीव यह, धर धर जन्म अपार ॥११॥

विकलत्रय के स्वांग में, नाचे चेतन राय।
उसी रूप परिणाम गये, वरने कैसे जाय ? ॥ १२॥
उपजे आय मनुष्य में, धरें पचेन्द्रिय स्वांग।
मद आठों में मग्न बन, मातो खाई भांग। १३॥
पुण्य योग भूपति भये, पाप योग भये रंक।
सुख दुख आपहि मान के, नाचत फिरे निशंक ॥१४॥
नारि नपुंसक नर भये, नाना स्वाग रमाय।
चेतन से परिचय नहीं, नाच नाच खिर जाय ॥१५॥
ऐसे काल अनंत से, चेतन नाचत तोहि।
अज हूं 'आप' संभारिये, सावधान किन होहि। १६॥
सावधान जो जीव भये, सो पहुंचे शिव लोक।
नाच भाव सब त्याग के, बिलसत सुख के थोक ॥ १७॥
नाचत है जग जीव जो, नाना स्वाग रमंत।
देखत है उस नृत्य को, सुख अनंत बिलसंत ॥१८॥
जो सुख होवे देखकर, नाचन में सुख नांहि।
नाचन में सब दुःख हैं, सुख निज देखन मांहि ॥१९॥
नाटक में सब नृत्य है, सार वस्तु कछु नांहि।
देखो उसको कौन है ? नाचन हारे मांहि ॥२०॥
देखे उसको देखिये, जाने उसको जान।
जो तुमको शिव चाहिये, तो उसको पहिचान ॥२१॥
प्रकट होत परमात्मा, ज्ञान दृष्टि के देत।
लोकालोक प्रमाण सब, क्षण इकमे लख लेत ॥२२॥
भैया नाटक कर्मते नाचत सब संसार।
नाटक तज न्यारे भये, वे पहुंचे भवपार ॥२३॥

❀ ॐ ❀

आत्महित शिक्षा

"गुणग्राहकता"



१. गुण ग्रहण करने वाला सद्गुण का खजाना है।

२. जिस गुण की अनुमोदना की जाय वह खुद में प्रवेश होता है।

३. जिसकी निंदा की जाय उसका दोष खुद में प्रवेश होता है।

४. हजार अवगुणों में से एक भी गुण ढूंढे वह समकिती।

५. एक भी दोष ढूंढे वह मिथ्यादृष्टि।

६. गुणी पुरुष के पास गुणकी टकसाल खुली रहती है।

७. दान, शील, तप और भावना की आराधना करने पर भी गुण ग्राहकता रहित सब निरर्थक है। क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति नही होती।

८. दूसरे के दोष ढूंढ़ना यह उसके गुण की भी निंदा करना है।

९. दूसरे के दोष देखना यह खुदके गुणों का अजीर्ण है।

१०. सब गुणो का भुवन गुण ग्राहकता है।

११. परगुण ग्राहकता मानव जन्मकी उत्पादिका है।

१२. ऐसा कोई भी जीव नही है जिसमें गुण न हो।

१३. दुनिया बाजार है तुम ग्राहक हो, गुण खरीदो या दोष ? १

१४. दोषग्राही कलियुगी है गुणग्राही सत्ययुगी है।

१५. दोषग्राही मिथ्यात्वी है गुणग्राही समकिती है।

१६. दोष देखनेवाला नरक की नाव बनाकर अपने साथियों को नरक में ले जाता है।

१७. मान की मात्रा विशेष वहाँ दोष दृष्टि विशेष।

१८. दोषोंका गुलाम दोष देखने की मुफ्त गुलामी करता है।

१९. गुणी भूल से भी दोष नहीं देखता है।

२०. सर्वोत्तम-आत्म भाव मे रहते है।

२१. उत्तम–सबके गुण लेता है।

२२. मध्यम–गुणीं के गुण लेता है।

२३. अधम–दोषी का दोष देखे।

२४. अधमाधम–निर्दोषी का भी दोष देखता है।

२५. 'बिना पाप किये सरलता से डूबने का उपाय दोष देखना है।

२६. बिना कष्ट के तिरने का उपाय सबके गुण ग्रहण करना है"।

---

१ कलि कलह, झगडे कुसप हो वहां कलियुग। दोष देखने से ही झगडे होते हैं।

२७. समदृष्टि (विवेकी) गुण दोष को यथार्थ समझे किन्तु दोष रूपी विष को मुंह मे ग्रहण कर राग द्वेष रूपी जठराग्नि में पचाकर आत्मिक सुख का नाश न करे।

२८. समदृष्टि रूपी हँस गुणरूप दूध को ही पीवे, दोषरूप पानी को छोड देवे।

२९. जैसा विचार वैसा आचार, जैसा आचार वैसा जीवन बनता है, इसलिए सदा गुणों को ही ग्रहण करो



"समकित बत्तीसी"



१ भोग के समय मे भी उसे त्यागका स्मरण रहता है।
२ श्री महावीर के समान अंतःकरण और विचार रखे।
३ विश्व मात्र का जो शिष्य है वही समदृष्टि है।
४ स्वतः को सबसे बडा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है।
५ सब गुणो का अंश सो ही समकित।
६ समकित की प्राप्ति अनंत पुरुषार्थ से होती है।
७ जो दोषों में से गुण ढूंढे वही समदृष्टि।
८ आत्मा का विश्वास यही निश्चय समकित है।
९ समकित केवल ज्ञान का बीज है।
१० देह गुण के समान आत्मगुण समझने में आवे वही समकित।

११ समदृष्टि को वीतराग दृष्टि होती है।

१२ समदृष्टि को प्रत्येक समय है 'देह मेरा नहीं है' ऐसी आवाज आती है।

१३ मिथ्यात्वी बधिर है, वह उस आवाज को नहीं सुन सकता।

१४ मिथ्यादृष्टि देहमय है और समदृष्टि आत्ममय है।

१५ मिथ्या दृष्टि देह की चिन्ता करता है और समदृष्टि आत्मा की चिंता तथा मनन करता है।

१७ शरीर से आत्मा को भिन्न समझने के लिये ही सकल शास्त्रों की रचना है।

१६ आत्मा की परम शांतिमय दषा ही समकित है।

१८ आत्मा की अशांत दशा ही परम मिथ्यात्व है।

१९ समदृष्टि कर्म का कर्ज चुकाने के लिये सदा तैयार रहता है।

२० स्व स्वरूप में निमग्नता समकित तथा पुद्गल में निमग्न रहना मिथ्यात्व है।

२१ समकित का अनुभव वचनगोचर नही है।

२२ कषाय को छेदने से समकित की प्राप्ति होती है।

२३ समदृष्टि को शरीर बधनस्वरूप प्रतीत होता है।

२४ सम्यक्त्वी अपने खुदके दोष प्रकट करता है तहा मिथ्यादृष्टि दूसरों के दोष प्रकट करता है।

२५ समदृष्टि की प्रत्येक क्रिया आत्म साधक होती है।

२६ शरीर की शौचादि क्रियाओं में भी जागृति रहनी चाहिये ।

२७ जितने अंश में स्त्री-पुत्र-धन तथा शरीर से उदासीनता उतने अंश में समकित और तीव्रता में मिथ्यात्व ।

२८ अपूर्व सो समकित तथा पूर्वानुपूर्व सो मिथ्यात्व ।

२९ पहले समकित और पीछे केवल ज्ञान ।

३० समदृष्टि को अपनी देह पर भी ममत्व नही होता है तो फिर वह अन्य किसके शरीर पर ममत्व रखे।

३१ गुणग्राही हृदय न बने तबतक समकित दूर है।

३२ समदृष्टि हीरे मोतियों को कंकर मानता है ।

" कर्म स्वरूप। "



१ आत्म स्वभाव का आवरण वही कर्म ।

२ कर्म से आत्मा अनंत बलवान है । इसलिये अनंत काल के कर्मो को क्षण मे क्षय कर सकता है ।

३ कर्मरूपी पिंजरे में आत्मरूपी सिंह कैद है।

४ मोहनीय कर्म भावना से क्षय हो सकता है ।

५ वेदनीय कर्म भोगना ही पडता हैं ।

६ प्रकृति और प्रदेश बंध योग से बंधते हैं ।

७ स्थिति और अनुभाग वंध कषाय से वंधते है ।

८ वेदनीय कर्म तीर्थंकर को भी भोगने पड़ते है।

९ आयु कर्म पृथ्वी के समान है और शेप कर्म वृक्ष के समान हैं ।

१० कर्म को अपनी आत्मा के सिवाय अन्य कोई भी देवता तथा इंद्र भी नहीं पलट सकता ।

११ उदयमान कर्म को वेदने मे हर्ष और शोक क्यों?

१२ अशाता भविष्य में आनेवाले दुःख को घटाती है।

१३ शाता भविष्य के सुख का नाश करती है।

१४ मोहनीय कर्म की प्रवलतासे शेप कर्म प्रवल वनते हैं।

१५ मोहनीय कर्म की शिथिलता से सव कर्म शिथिल पडते है ।

१६ राग सहित परिणाम वही कर्म ।

१७ ज्यों ज्यों कर्म विशेप ग्रहण किये जाते हैं त्यो त्यों शरीर छोटा वनता जाता है पृथ्वी, पानी आदि स्थावर जीवयोनि में जन्म होता है ।

१८ चारो कषायों में क्रोध भोला है और शेप तीन दगावाज है ।

१९ मोहनीय कर्म जल्दी आता है और जल्दी ही भाग जाता है ।

२० मोहनीय कर्म विना वुलाये आता है और बिना निकाले ही खुद भूत की तरह भाग जाता है ।

———

" कषाय "

१ जगत में मान न होता तो इसी भव में मोक्ष प्राप्त हो जाता।

२ मंदकषाय वाले को ही सत्संग का लाभ मिल सकता है।

३ जहां ज्ञान है वहां कषाय नहीं है और जहां कषाय है वहां ज्ञान नहीं है।

४ ज्ञान का आवरण राग द्वेष ही है।

५ राग द्वेष के अभाव से सम्यक् ज्ञान को प्राप्ति होती है।

६ विषय-कषाय को छोडने के बजाय आत्मा को ही छोड दिया। विषय-कषाय छोडने से मोक्ष होता है।

७ ज्ञानी के चेताने पर भी हिताहित का बोध न होने दे सो ही कषाय। कषायी शराबी के समान नशेबाज है।

८ महापुरुष बाहुबलीजी-मान को भी नहीं समझ सके।

९ महापुरुष स्कंदकजी क्रोध को भी नही समझ सके।

१० मल्लीप्रभुका जीव माया स्थानको नहीं जान सका।

११ राजर्षि प्रसन्नचन्द्र लोभ को नहीं पहचान सके।

१२ श्री शालिभद्रजी राग को नहीं समझ सका।

१३ श्री हरिकेशी का जीव द्वेष को नही समझ सका।

१४ सूक्ष्म कषाय सूक्ष्म शल्य के समान भयंकर है।

" भावना । "



१ सारे जगत् के जीवों के साथ निर्वैर बुद्धि सो ही मैत्री ।

२ किसी में अंशमात्र भी गुण देखकर खुश होना प्रमोद

३ दुःखी को देखकर अनुकम्पा लाना सो करुणा ।

४ शुद्ध समकित के योग्य होना सो मध्यस्थ भावना ।

५ क्रोधादि कषायों का शांत होना सो सम ।

६ मुक्ति के सिवाय अन्य अभिलाषा न करना यह संवेग ।

७ संसार के भव-भ्रमण से खेदित होकर ज्ञान मे रमण करना सो निर्वेद ।

८ महापुरुषों के वचनों में लीनता सो आस्था ।

९ सब जीवों को स्वात्म तुल्य समझना यही अनुकपा ।

१० सत्य को सत्य समझना यह विवेक ।

११ सब पर समभाव रखना यह सम ।

१२ वृत्तियों को बाहिर नहीं जाने देना यह उपशम ।

" वचनामृत "



१ जिस कार्य से अनंत-ज्ञानो डरते है उसे एक अज्ञानी सहर्ष करता है।

२ बुद्धि बल से अनुभव बल अनन्त मूल्यावान् है।

३ जड़ को अपना ज्ञान नहीं है। वैसे ही अज्ञानी को अपना ज्ञान नहीं है। अतएव जड़ और अज्ञानी में क्या भिन्नता है ?

४ आत्मा का निश्चय होजाय तो विषय-कषाय छूट जांय। आत्माके अनिश्यसे ही राग द्वेष होरहे है।

५ अपनी आत्मा का बुरा करने में कुछ भी कसर नहीं रखी गई है।

६ विषय-कषाय का विरेचन करावे वही जिनवाणी।

७ 'हम ज्ञानी है' ऐसा कहने वाले खुद को ठग रहे हैं

८ अशाता का उदय होने पर ज्ञानी तथा अज्ञानी की परीक्षा होती है। कसौटी के बिना पीतल और सोना समान दीखते हैं।

९ आरंभ, परिग्रह, विषय और कषाय में रक्त हो उसे बोध देना मुर्दे को दवा देने के बराबर है।

१० चक्रवर्त्ती को अंत मुहूर्त में बोध लगता है तहां जन्म के दरिद्री को अनंत काल तक भी बोध नहींहोता

११ अनतबली प्रभु ने भी संसार का त्याग किया था।
१२ ज्ञानी के वचनों को अज्ञानी बकवाद समझता है।
१३ प्रभु की आज्ञा के बाहर विचरना यह स्वच्छंदता है।
१४ प्रभु के वचनों को नहीं मानना यह प्रभु का विरोध या अशातना करने के बराबर है।
१५ आत्म उपयोग से विरहित विचरना यही आत्म घात है।
१६ मोहभाव यही मिथ्यात्व है।
१७ विषय-कषायी ज्ञानी के वचनों पर पैर रखकर चलता है।
१८ प्रमाद के स्वरूप का ज्ञाता अप्रमत्त रहता है।
१९ आत्मधर्म आत्मा मे ही है।
२० देह में विराजमान आत्मा सुखी है अथवा दुःखी ?
२१ ज्ञानी देह से आत्मा की चिंता अनंत रखता है।
२२ आत्मा अपने स्वरूप को भूलकर भ्रमण करता है।
२३ आत्म-ज्ञान के बिना अन्य कोई महान् उपकार नहीं है।
२४ सिद्ध के समान सबका सामर्थ्य है।
२५ आरंभ परिग्रह की इच्छा यही आत्मघात है।
२६ पुग्दलानंदी को आत्मज्ञान क्योंकर हो सकता है ?
२७ मोक्ष मार्ग के सिवाय शेष सब उन्मार्ग है।
२८ देह के प्रति वस्त्र या मैल के समान आत्मा का सम्बन्ध है।

२९ देह वृक्ष है, आत्मा मुसाफिर है।

३० आत्मा को नहीं पहिचाने वह अनंत-संसारी।

३१ जब आत्मा का कोई नाम ही नही तो फिर मान अपमान किसका ?

३२ आचरण रहित ज्ञान की बातें करने वाला ज्ञान तथा अनंत ज्ञानी की अवहेलना करता है।

३३ स्वप्न में भी शरीर और आत्मा की भिन्नता का ज्ञान होना चाहिये। ऐसे ज्ञानवाला ही समदृष्टि है।

३४ विषय-कषाय की इच्छा सातवें नरक से भी भयं-कर है। यह बात समदृष्टि हो समझ सकता है।

३५ सर्प और अग्नि से भी विषयकषाय भयंकर है।

३६ आरंभ और परिग्रह दृष्टिविष सर्प हैं।

३७ द्वेष करना नही; और करना हो तो आरंभ और परिग्रह से।

३८ राग करना नही और करना हो तो आत्मज्ञान से।

३९ स्त्री, पुत्र और धन के आधीन सो विश्वाधीन।

४० विषय को जिसने वश में किया उसने सारे विश्व को वश में किया।

४१ एकान्त में विचार किये स्त्री, पुत्र तथा धन सुख-वर्धक है या दु खवर्धक ?

४२ विषय-कषाय मय प्रवृत्ति से आत्माका नाश होता है।

४३ आरंभ और परिग्रह महारोग हैं।

४४ जिसे खुद का ज्ञान नहीं है उससे बढ़कर अज्ञानी तथा मिथ्यादृष्टि दूसरा कौन हो सकता है ?

४५ आरंभ और परिग्रह से प्रेम यह मिथ्यात्वी एवं अनंत–संसारी का लक्षण है। समदृष्टि उदासीन रहता है।

४६ चरित्र-रहित ज्ञान भाररूप है।

४७ आत्मा को आंख के समान निर्मल रखो।

४८ आंख में जैसे रजकण खटकता है उसी प्रकार समदृष्टि को आरंभ और परिग्रह खटकता है; दुख का अनुभव होता है।

" वचनीयता बनाम मौन "

१ वचन शांत, मधुर, सत्य, तथा कोमल होने चाहिये।

२ अल्प बोलने वाले को अल्प पश्चात्ताप होता है।

३ एक एक शब्द को मोतीसे भी मूल्यावान् समझो।

४ अप्रिय वचन विष से भी विशेष भयंकर हैं।

५ जो आनद मौन में है वह बोलने में नहीं है।

६ मौन मोक्ष का अनुत्तर मार्ग है।

७ मौन वीतरागपद का अनुभव कराने वाला है।

८ मौन विषय कषाय को रोकने का केन्द्रस्थान है।

९ मौन समुद्र के समान गभीर है।

१० मौन ही प्रभु महावीर का मुनिपन था।

११ मौन आत्म-समाधि का गुप्त मंत्र है ।

१२ मौन का उलटा नमो, याने नमस्कार करने योग्य ।

१३ मौन ही आत्मज्योति, ध्यान, तथा निर्जरा है ।

१४ अनंत के भूत और भविष्य के तीर्थंकर मौन धारणकर अपूर्ण के पूर्ण हुए हैं और होंगे ।

" शरीर । "

१ यह शरीर सिर्फ साढ़े तीन हाथ जमीन मांगेगा ।

२ काया मल मूत्र का भाजन है, उसकी चिंता क्या ?

३ अंतिम अवस्था का प्रत्येक समय में स्मरण कर ।

४ चौदह राजलोक में भयका कारण यह शरीर ही है ।

५ शरीर हाड मांस का पिंड है, उसका मोह क्या ।

६ मोक्ष साधन के लिये यह ज्ञानी की नाव है ।

७ शरीर वेदना की भयंकर मूर्त्ति है ।

८ चौदह राजलोक की संपत्ति से मानव भव की एक घड़ी अनंत मूल्यावान् है ।

९ चिंतित जिससे प्राप्त होवे चिंतामणी नरभव ।

१० तीर्थंकर भी मृत्यु से चेतकर सावधान बने ।

११ अनंत बार मानवभव निष्फल गया है । इस बार संपूर्ण सावधानी रख अन्यथा यह भी निष्फल चला जायगा ।

१२ ज्ञानी का देह कर्म क्षय करने के लिये है ।

" मृषावाद बत्तीसी । "

१ असत्य वचन बोलनेवालोंका मुंह गटरके समान है।
२ असत्य वचन बोलने से नरक में जाना श्रेय है।
३ सत्यभाषी चन्द्र से भी विशेष शीतल है।
४ मिथ्याभाषी अग्नि से भी विशेष भयंकर है।
५ सत्यवादी के स्पर्श से भूमि पवित्र होती है।
६ मिथ्याभाषी के स्पर्श से भूमि कलंकित होती है।
७ सत्यवादी संसार-समुद्र तिरता है और मिथ्याभाषी संसार में अनन्त काल तक डूबता है।
८ मिथ्यावचन विष और शस्त्र से भी भयंकर है।
९ सत्य में ज्ञान, दर्शन और चारित्र है।
१० असत्य में हिंसा, विषय और कषाय है।
११ सत्य देवताओं को भी प्रिय है।
१२ असत्य नरक के नेरियो को भी अप्रिय है।
१३ सत्यभाषी इन्द्र है, मिथ्यावादी महाचंडाल है।
१४ प्राण देकर भी सत्य की रक्षा करो।
१५ सब पापों का मूल असत्य है।
१६ असत्य स्व और पर को नरक में ले जाता है।
१७ असत्यभाषी की छाया भी अनंत बुरी है।
१८ मृषावादी के लिए नरक की सजा भी अपूर्ण है।
१९ मृषावादी चोरके समान संसार-समुद्रमें भ्रमणकरताहै
२० मृषावादी प्रत्येक समय नरक निगोदमें प्रवेश करताहै।

२१ सत्य चैतन्य है और मृषावाद जड़ता है।
२२ मृषावादी पग पग पर पतित होता है।
२३ मृषावाद हलाहल विष है।
२४ मृषावाद निर्दयी दाबानाल है।
२५ मृषावादी का स्पर्श अग्नि से भयंकर है।
२१ सब विषों से मृषावाद का विष भयंकर है।
२७ मृषावादी अग्नि में शीतलता ढूंढता है।
२८ मृषावाद पिशाच से भी अनंत गुणा भयंकर है।
२९ सब रोगों से मृषावाद का रोग महा भयंकर है।
३० मृषावादी में अनंत दोष हैं।
३१ मृषावादी धर्म-वृक्ष का नाश करता है।
३२ मृषावाद रत्नत्रय का नाश करता है।
अग्निप्रवेश से भी मृषावाद अनंत भयंकर है।
सत्य शांत सरोवर है उसमें स्नान करो।

"इंद्रियां"

१ इंद्रियां बंदर के समान हैं। उन्हे ज्ञान के पिंजरे में कैद करिये।
२ इंद्रिय–विजय होने से आत्म ज्ञान होता है।
३ इद्रियो के समान आत्म में लीनता प्राप्त होजाय तो आजही मोक्ष होजाय।
४ इद्रियाँ नरक और निगोद में जाने की सीढ़ियाँ है।
५ विष राई जितना है और विषय मेरु जितना है।

६ अग्निकी क्षुधासे इन्द्रियोंको क्षुधा अनंतगुणी भयंकरहै।

७ इंद्रियविजय बिना स्वर्ग या मोक्ष की इच्छा मस्तकसे पर्वत तोड़ने के समान है।

८ इंद्रियों का भोग भोगना यह सर्प को पकड़ कर उसका दांत उखाड़कर उससे अपनी खाज खुजलाने से भी अनंत भयंकर है।

९ ज्ञानी चिंता करते हैं कि अल्पकाल के इंद्रियों के सुख भोगकर अनत काल के नरक और निगोद की वेदना कैसे सहन कर सकेगा (बाल जीव)।

" हितोपदेश- "

१ संसाररूपी नाटचशाला में मनुष्य नृत्य कर रहा है।

२ विषय और कषाय आत्मा के लिये कुपथ्य है।

३ विषय-कषायरूपी पत्थरसे अपना सिर क्यों फोड़तेहो?

४ सर्प पकड़ने वाला मूर्ख है तो फिर स्त्री-पुत्र-धन आरंभ और परिग्रह से प्रेम करने वाला कैसा है ?

५ पापमय जीवन को पवित्र मत मानो।

६ भव-भ्रमण का कारण एक मात्र शरीर ही है।

७ इस शरीर पर चमड़ी न होती तो मक्खी, मच्छर, और पक्षी इसे खा जाते।

८ धर्म, मित्र-देव-गुरु-स्वामी और बंधु है।

९ निगोद मे गिरते हुए बचावे वही धर्म।

१० अज्ञान का राज्य तीनों लोक मे है।

११ मोहरूपी अग्नि से सारा संसार जल रहा है।

नंदन बन के मुक्ताफल



१ अनंतानंतावश्यक; स्वरुप से लीनता
२ विशेषावश्यक; ध्यान, अखड जागृति में लीनता
३ मध्यमावश्यक; पठन, मनन, लेखन, उपदेश
४ अनिवार्य; आहार, विहार, निहार, व्यायाम आदि
५ अनावश्यक; विकथा, निंदा, प्रमाद, मदादि
६ अनंत घातक; हिंसा, विषय कषाय ॥१॥

१ मोक्ष मेरा अनादि का जन्मसिद्ध हक्क है।
२ भव्य ! विचार कि अनंत बलो आत्मा के पास कर्म कौन चीज है ?
३ पैर अनंत बली है और मार्ग अनंत अल्प है। उस अनंत दिशा की ओर अनंत बल से जाने के लिये दृढ़ निश्चय होना चाहिये ॥२॥

१ इस हाड़, मांस, लोही, राद, पित्त, कफ और मल-मूत्र की चमड़े की थैली में यह जीव इच्छा पूर्वक कैद है, उसके मोह से अनंत भव भ्रमन हुए हैं अब तो विश्राम लेना चाहिये ॥३॥

१ असंख्य देवियों का परिचय कालो नागिन से अनंत भयकर प्रतीत हो ऐसी वैराग्य दशा और यह स्थिति तो अनंत वक्त प्राप्त हुई सिर्फ सम्यक् ज्ञान के अभाव से भव भ्रमन न मिटा ॥ ४ ॥

१ प्रत्येक समय पर अपने को महावीर मान।
वीतरागी वन।
२ वीतरागी वचन, विचार, वर्तन व विवेक रख।
२ सरागता से अनंत संसार।
४ प्रत्येक प्रसंग पर अखंड जागृति रख।
५ "समयं गौयम मा पमायए" ॥५॥
१ णोकोहे, णोमाणे, णोमाये णोलोहे,
सो-हँ।
२ णोसद्दे, णोरूवे, णो गंधे णो रसे, णो फासे।६॥
१ भद्रता, विनय, अनुकंपा और निराभिमानता यह मूल पूजी है। नही तो नरक, तिर्यंच, गति निश्यय ही है।।७॥
१ उपादान का विचार करता है वह समदृष्टि, निमित्त को दोष दे वह मिथ्यादृष्टि ॥८॥
१ ८४,००,००० जीवयोनि में इस आत्मा से भी कोई अधम प्राणी है ? ॥९॥
१ ८४,००,००० जीव योनि में इस आत्मा से भी कोई विशेष पुण्यशील है ? ॥१०॥
१ द्रव्य से मैं इक हूं, असग हूं, शरीर से रहित हूं, क्षेत्र से असंख्य लोकाकाश प्रमाण हूं। काल से अजर अमर, शाश्वत, अविनाशी हूं। ~~काल से अजर~~ भाव से शुद्ध चेतन स्वरूप निर्विकल्प दृष्टा हूं ॥११॥
१ तू प्रभू का विरोधी है या भक्त ?
२ प्रत्येक पद २ पर वीतरागता सीख ?

३ राग करना नहीं यदि करना हो तो आत्म दशा से
४ द्वेष करना नहीं यदि करना हो तो विषय कषाय से
५ एक मोक्ष मार्ग सन्मार्ग है शेष सब उन्मार्ग है ।
६ सुख को न चाहने वाला सिद्ध, नास्तिक या जड
७ विषय, कषायी जीवन से लाभ हानि विचार ।
८ अणु मात्र विषय, कषाय सेवन से अनंत संसार॥१२॥
१ अखंड जागृति वही जीवन, शेष मृत्यु ।
२ स्व-पर को भिन्न करता है, वही ज्ञान ।
३ देह देवालय है और आत्मा देव है ।
४ देह में वसनेवाला आत्मा सुखी है या दुखी ?
५ समकित से नवीन जन्म गिना जाता है ॥१३॥
१ हिंसा, विषय और कषाय को सिंह, सर्प और अग्नि
से अनत भयंकर समझ ॥१४॥
१ वीतराग दशा से चरम शररी और सराग दशा से
अनंत ससारी ॥१५॥
१ प्रभव, चिलायतो रोहाचोर, संयति, परदेशी राजा,
चंडकोशि सर्प और सोनी को मेरे अनंत नमस्कार॥१६।
१ सम्यक्त्वी अरिहंत, सिद्ध, जिन केवली, वीतरागी
अयोगी, अशरीरी, दशा का अनुभव करता है ॥१७॥



अपनी डायरी

१ इस साल कितने गुण बढ़ाये ?
२ विषय, कषाय पर कितना विजय किया ?
३ प्रमाद का कितना विजय किया ?
४ आत्म कल्याण के लिए कितना समय निकाला ?
५ पाप कर्म में कितना समय निकाला ?
६ आरम्भ परिग्रह से मोह घटाया या बढ़ाया ?
७ क्रोध को कितना मात्रा में घटाया ?
८ मान का कितना मर्दन किया ?
९ माया को त्याग कर कितनी सरलता प्राप्त की ?
१० लोभ-दशा, तृष्णा घटी या बढी ?
११ पांच इंद्रिय के विपय विकार कितने घंटे ?
१२ विपय कपाय का विजय कितना बाकी है ?
१३ यह साल सफल गया या निष्फल ?
१४ जीवन का सदुपयोग किया या दुरुपयोग ?
१५ इस साल क्या करना चाहते हो ?
१६ ऐसा पापमय जीवन कब घटाओगे ?
१७ क्या आयुष्य का भरोसा है ?
१८ आज मृत्यु हो जाय तो कौनसी गति मिले ?
१९ आज ही नही तो कल निश्चित ही मरण है ?
२० विषय कपाय मय जीवन वाले को एक क्षण अनंत भयंकर है; तीन दिन को विपयाशा से कुंडरिकजी सातवीं नरक में गये, तो पाठक ! अपने पाप का या पाप के फल स्वरूप गतिका विचार कीजियेगा ।

अपूर्व वचनामृत ।

१ वीतरागी भाव बिना सब हेय।

२ केवली प्रभु का परोक्ष आनंद ले वह ज्ञानी ।

३ वीतरागी का परोक्ष आनंद ले वह समदृष्टि ।

४ राग, द्वेष और लोभ यह अज्ञानी के संतान है ।

५ ज्ञान, दर्शन और चारित्र यह ज्ञानी के संतान है ।

६ समदृष्टि जागृत दशामें और स्वप्न में हिंसा, विषय, कषाय को सिंह, सर्प और अग्निवत् समझता है ।

७ जहां ज्ञान है वहां विषय कषाय का अभाव होता है ।

८ आश्रव ने तीन लोकको वश किया ।

९ अतींद्रिय सुखानुभव करे वह समदृष्टि ।

१० देहालय वही सिद्धालय है ।

११ देह मंदिर है और आत्मा देव है ।

१२ निज रूप मे रमण करे वही ज्ञानी ।

१३ अपने को देह रहित अनुभव करने वाला ज्ञानी ।

१४ सब प्रसंगो में मध्यस्थ रहे वही समदृष्टि ।

१५ मन, वचन काया और इंद्रियों का निरोध करना यह द्रव्य संवर ।

१६ राग, द्वेष और मोह का अभाव भाव संवर है ।

१७ राग, द्वेष, मोह का नाश यही सामायक ।

१८ पुद्गल संग से जीव असुंदर है ।

१९ ज्ञान संग से ही जीव सुन्दर है।

२० ज्ञान ज्योति से विषय कषाय का नाश होता है ।

२१ देह और इन्द्रिय के आधीन न रहे वही मुनि ।

आस्तिक यंत्र.

१ राजमतिजी ने रहनेमिजी को विषय भोग भोगने की अपेक्षा मृत्यु का आलिंगन करना श्रेष्ठ कहा.

२ अरणक को संसार में फंसा देखकर माता ने (अपने प्रिय पुत्रको) गरम शिला पर संथारा करने की आज्ञा दी और पुत्रने सहर्ष स्वीकारी।

३ उदाई राजाने अपने प्रिय पुत्र को राज्य न दिया।

४ कीर्तिध्वज मुनि ने अपने शिष्य (पुत्र) को धर्म आराधनार्थ सिंहनी का भक्ष होते देख समभाव रखा।

५ स्कंधजी ने अपने ४९९ शिष्यों का धर्म आराधनार्थ घाणोमे पिलाते देख समभाव रखा।

६ अंबडजी ने अचौर्यव्रत की रक्षा के लिए ७०० शिष्यों को उष्ण रेती में संथारा करने की आज्ञा दी।

७ सुदर्शन सेठ ने राणी के साथ भोग न भोग शूली पर जाना श्रेष्ठ समझा। अंतमें शूली का सिंहासन हुआ।

८ सुदर्शन श्रावक की माता ने पुत्रको यक्ष का भय होते हुए भी प्रभु दर्शन की आज्ञा दी।

९ पोटीला (देव) ने अपने स्नेही तेतली प्रधान को उपसर्ग देकर संयम दिलाया।

१० धन्नाजी ने शालिभद्रजी को कायर कहा और बत्तीस स्त्रियों को एक साथ छुड़ाना चाहा.

११ महाशतक आदि श्रावकों को ध्यान में डिगायमान देखकर उनकी माता व स्त्रियोंने उनको उपालंभ दिया।

मैं कौन और कैसा ?

१ महावीर जैसा समभावी।
२ मेघरथ राजा जैसा अहिंसक।
३ अरणक श्रावक जैसा सत्यवादी।
४ जिनदत्त श्रावक जैसा अदत्त व्रतका आराधक।
५ सुदर्शन सेठ जैसा शीलवंत।
६ पुणीया श्रावक जैसा संतोषी।
७ जंबुकुमार जैसा वैराग्यवंत।
८ गजसुकुमार जैसा क्षमावंत।
९ बाहुबलजी जैसा ध्यानी।
१० अंबडजी के ७०० शिष्यों जैसा व्रतमें दृढ।
११ अरणक मुनि जैसा विनयवंत।
१२ परदेशी राजा जैसा सरल।
१३ सुदर्शन श्रावक जैसा धर्म में दृढ।
१४ स्कंधकजी के ४९९ शिष्यों जैसा धैर्यवान।
१५ चंदनबाला जैसा गुणग्राहक
१६ अर्जुनमाली जैसा स्वदोष दर्शक।
१७ सयति राजा जैसा धर्म मे श्रद्धावंत।
१८ रोहाचोर जैसा जिनवाणी सुननेवाला।
१९ चमड़ी उतारने वाले स्कंधजी जैसा समतावान
२० प्रभाव चोर जैसा धर्म मे श्रद्धावंत।
२१ गौतम गणधर जैसा तत्त्वग्राहक।

समदृष्टि चक्र.

सम द्रष्टि पुरुष शत्रु और मित्र, प्रशंसक और निंदक, दोनों को समान समझते हैं जिसका यह यंत्र है ।

समद्रष्टि के नाम	शत्रु	मित्र
१ प्रभु महावीर	१ कष्टदाता सगम	१ भक्त इन्द्र
२ पार्श्वप्रभु	२ कष्टदाता कमठ	२ भक्त धरणेंद्र
३ गजसुकुमार	३ मस्तकपर अंगारे	३ राजमुकुट
४ गजसुकुमार	४ सोमल ब्राह्मण	४ भक्त कृष्ण
५ मेतारज मुनि	५ कष्टदाता सुवर्णकार	५ दानदाता सुवर्णकार
६ शालीभद्र	६ सेवक का अपमान	६ माता का बदन
७ कीर्तिध्वज	७ राणी का अपमान	७ पुत्र का बदन
८ परदेशी	८ राणी का विषदेना	८ पुत्र की भक्ति
९ अरणक	९ देव उपसर्ग	९ देव नमन

१० सुदर्शन सेठ	१० शूली	१० सिहासन
११ सुदर्शन श्रावक	११ यक्ष उपसर्ग	११ उपसर्ग शाति
१२ स्कधकजी	१२ चमडी उतारते चडाल	१२ भक्त-देव
१३ अंबड शिष्य	१३ उष्णा बालू	१३ सुख शय्या
१४ धर्मरुचि	१४ कडवी तु बी का शाक	१४ खीर
१५ दमदत	१५ निंदक कौरव	१५ भक्त पाडव
१६ पुणीया श्रावक	१६ पत्थर	१६ पारस
१७ चंदन बाला	१७ मूला	१७ पदमावती

ज्ञान चक्र.

महा पुरुष	अज्ञान दशा	ज्ञान दशा
१ परदेशी राजा	१ खून के हाथ	१ ४० दिन मे श्रेय
२ सुवर्णकार	२ मेतारज घात	२ मुनिवेष
३ अर्जुनमाली	३ ६ पुरुष १ स्त्री की घात	३ परम अहिंसक
४ बाहुबलजी	४ भरत चक्री पर मुष्ठी	४ शिरलोच

महापुरुष	अज्ञानदशा	ज्ञानदशा
५ सयतिराजा	५ हिरण का शिकार	५ सयम
६ प्रभव चोर	६ चोराचार्य	६ धर्माचार्य
७ जबुजी	७ ८ राजकन्या लग्न	७ संयम
८ शालीभद्रजी	८ नित्य एक स्त्री त्याग	८ बत्तीस का त्याग
९ धन्नाजी	९ स्नान	९ आत्म स्नान
१० गोशाला	१० प्रभुनिंदा	१० खुदकी निंदा
११ प्रसन्नचद्रजी	११ नर्क के विचार	११ केवलज्ञान
१२ चडकोशी सर्प	१२ प्रभु को काटना	१२ प्रभु वदन
१३ मेघकुमारजी	१३ संसार की इच्छा	१३ संयम में दृढ
१४ अरणक	१४ ससारी हुआ	१४ सथारा किया
१५ दृष्टि विष सर्प	१५ बाहर कोस में विष	१५ गारुडी रक्षा

उपरोक्त महापुरुषोकी अज्ञान अवस्था के पाप बतलाये है और ज्ञान होते ही उन्होंने धर्म आराधन किया है विशेषार्थ ज्ञानी पुरुषोसे समझिएगा ।

विषय कषाय चक्र.



अल्प क्रोधसे— स्कंधकजी को भवभ्रमण करना पड़ा।
अल्प मानसे— बाहुबलजी को केवलज्ञान रुकगया था।
अल्प मायासे मल्लीप्रभु के जीवको स्त्रीवेद होनापड़ा।
अल्प लोभसे— ढंढणजी को आहार में अंतराय रहो।
अल्प रागसे— शालीभद्रजी को मोक्ष न मिला।
अल्प द्वेषसे— हरीकेशीमुनि चांडालकुलमें उत्पन्नहुए।
शब्दसे— प्रसन्नचद्र राजर्षि ध्यानसे डिगगये।
रूपसे— ब्रह्मदत्त के जीवने नियाणा किया।
गधसे— शेलक राजर्षिको प्रमादावस्था प्राप्तहुई।
रससे— मगु आचार्यको यक्ष होना पड़ा।
स्पर्श से— कुडरीकजी को भी सातवीं नरक में जाना पडा।

अशुभ मनसे— तिदुलमच्छ सातवीं नरक में जाता है।

उपरोक्त विषय समझमे न आवे तो ज्ञानी पुरुषों से समझिएगा। इस चक्र में अल्प क्रोध, मान, माया, लोभ व शब्द, रुप, गंध, रस स्पर्श का विषय कितना भयंकर है उसका सक्षेप में चित्र खींचा है।

संसार चक्र.

नाम	अंतरमुहूर्त मे जन्ममरण[1]	कायस्थिति
पृथ्वीकाय	१२८२४	असंख्यातकाल
अपकाय	१२८२४	"
तेऊकाय	१२८२४	"
वाउकाय	१२८२४	"
प्रत्येक वनस्पतिकाय	३२०००	"
साधारण वनस्पतिकाय	६५५३६	अनंतकाल[2]
बेइंद्रिय	८०	[3] २००० सागर
तेइंद्रिय	६०	
चौरोंद्रिय	४०	
असज्ञी पचेंद्रिय	२४	
सज्ञी पंचेंद्रिय	अंतर्मुहूर्त	
नारकी	१०००० वर्ष	
देवता	१०००० वर्ष	

१. १२८२४, ६५५३६, ८०, ६०, ४०, २४, इतने जन्म मरण उपरोक्त जीव सिर्फ एक अंतर्मुहुर्त में ही करते हैं। २ असख्य काल का अर्थ असख्य अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी और अनंतकाल का अर्थ २॥ पुद्गल परावर्तन। ३ त्रस जीव २००० सागर मे धर्म का आराधन करके मोक्ष में न जाय तो वह निश्चय से स्थावर में जाता है।

वचनामृत



१ विषयवासना यही संसार, संसार यही विषयबासना।
२ प्रमादीका जीवन अनंत भय से पूर्ण है ।
३ अप्रमादी का जीवन अनंत निर्भय है ।
४ प्रमादी अनंत दुःखी, अप्रमादी अनत सुखी है ।
५ आत्मज्ञानी को विश्व का ज्ञान है ।
६ आत्मज्ञान विहीन सबसे बड़ा अज्ञानी है ।
७ समदृष्टी आश्रव को संवर, मिथ्यादृष्टी संवर को आश्रव बनाता है । समदृष्टि दोष मे से गुण ढूंढता है, तब मिथ्यादृष्टि गुण में से भी दोष ढूंढता है ।
८ आत्माही अपना शत्रु और मित्र है ।
९ क्रोध विष, मान शत्रु, माया भय और लोभ दुःख का स्थान है ।
१० राग और द्वेष यह दोनों संसार वृक्ष के बीज हैं ।
११ अज्ञानी का सब जीवन प्रमाद में जाता है ।
१२ ज्ञानी संसार से क्षण में मुक्त हो जाता है तब अज्ञानी अनत संसार भ्रमण करता है ।
१३ संसारी जीव सदा मोहनींद में सोये हुए हैं ।
१४ आत्मज्ञानी सदा जागृत हैं ।

अनुपूर्वी (भावना सहित)।



भव्यजीवों के हितार्थ पूर्वाचार्य महाराज ने अनुपूर्वी की रचना की है। इसमे नवकार मंत्र के पद अनुक्रम रीति से गिनने में ही पूर्ण लाभ नहीं होता है। किन्तु प्रत्येक पद को नीचे दिये हुए यंत्र के अनुसार भाव सहित शांतचित्त से मनन करने से ही पूर्ण लाभ हो सकता है। माला फेरने वालों को भी इस नम्र निवेदन पर कृपा करके ध्यान देना चाहिये।

चित्त की एकाग्रता तथा विशुद्ध आत्मोपयोग की जागृति यही सब शास्त्रकारों के उपदेश का सार है।



(भावना सहित) अनुपूर्वी गिनने कि रीति ।

संख्या	नवकार मन्त्र की अनुपूर्वी	कषाय की अनुपूर्वी	पंचआचार की अनुपूर्वी
१	अरिहंत देव को नमस्कार हो, मैं भी राग द्वेष, मोह को क्षय करके अरिहंत बनूं ।	१ क्रोध क्षय हो । क्षमा प्रकट हो ।	१ अज्ञान क्षय हो । सत्य ज्ञान प्रकट हो ।
२	सिद्ध भगवान् को नमस्कार हो, मैं भी सकल कर्मों का नाश करके सिद्ध बनूं ।	२ मान क्षय हो । विनय प्रकट हो ।	२ मिथ्यात्व क्षय हो । समकित प्रकट हो ।
३	आचार्य महाराज को नमस्कार हो, मैं भी ज्ञानादि पंचाचार प्रकट कर सकूं ।	३ माया क्षय हो । सरलता प्रकट हो ।	३ विषय-कषाय क्षय हो संयम गुण प्रकट हो ।
४	उपाध्यायजी महाराज को नमस्कार हो, मैं भी सूत्रों का ज्ञान पढकर उपाध्याय बनूं ।	४ लोभ क्षय हो । संतोष प्रकट हो ।	४ प्रमाद नष्ट हो । अप्रमाद शुद्धतप प्रकट हो।
५	सर्व मुनि महात्माओं को नमस्कार हो, मैं भी पंच महाव्रतधारी मुनि बनूं ।	५ अज्ञान नाश हो । ज्ञान प्रकट हो ।	५ कुपुरुषार्थ क्षय हो । पंडित वीर्य प्रकट हो

(१)

१	२	३	४	५
२	१	३	४	५
१	३	२	४	५
३	१	२	४	५
२	३	१	४	५
३	२	१	४	५

(२)

१	२	४	३	५
२	१	४	३	५
१	४	२	३	५
४	१	२	३	५
२	४	१	३	५
४	२	१	३	५

(३)

१	३	४	२	५
३	१	४	२	५
१	४	३	२	५
४	१	३	२	५
३	४	१	२	५
४	३	१	२	५

(४)

२	३	४	१	५
३	२	४	१	५
२	४	३	१	५
४	२	३	१	५
३	४	२	१	५
४	३	२	१	५

१ दानके प्रभाव से धन्नाजी और शालिभद्रजी अगणित ऋद्धिको भोगकर देवलोक मे पधारे; यावत् वे सिद्धपद को प्राप्त करेंगे, ऐसा जानकर सुपात्र को दान देना चाहिये।

२ शील के प्रभाव से सुदर्शन सेठ की शूली सिंहासन में परिणत हो गई तथा कमलावती के कटे हुए हाथ नव पल्लवित हुए, ऐसा जानकर शील पालना चाहिये।

३ तप के प्रभाव से धन्ना अणगार, दृढप्रहारी, हरिकेशी मुनि और ढढण ऋषि आदि कर्म क्षय करके मोक्ष पहूंचे; यह जानकर तप करना चाहिये।

४ भाव के प्रभाव से राजर्षि प्रसन्नचंद्र, ऐलायची कुमार, कपिल मुनि, स्कांदक मुनि के शिष्य, भरत चक्रवर्ती और मरुदेवी माताजी आदि ने मोक्ष पद प्राप्त किया; यह जानकर भावना भानी चाहिये।

(५)

१	२	३	५	४
२	१	३	५	४
१	३	२	५	४
३	१	२	५	४
२	३	१	५	४
३	२	१	५	४

(६)

१	२	५	३	४
२	१	५	३	४
१	५	२	३	४
५	१	२	३	४
२	५	१	३	४
५	२	१	३	४

(७)

१	३	५	२	४
३	१	५	२	४
१	५	३	२	४
५	१	३	२	४
३	५	१	२	४
५	३	१	२	४

(८)

२	३	५	१	४
३	२	५	१	४
२	५	३	१	४
५	२	३	१	४
३	५	२	१	४
५	३	२	१	४

५ ऋषभदेव स्वामी की एक चित से सेवा भक्ति करने से नमि और विनमि इन दोनों भाइयों को राज्य विद्या तथा सद्गति मिली; इसलिये जिनराज की सेवा करनी चाहिये।

६ स्व तथा पर समय के जानकार केशी गुरु की वाणी सुनने से परदेशी राजा सरीखा नास्तिक देव-लोक गया: यावत् सिद्धपद प्राप्त करेगा। इसलिये गुरु की वाणी श्रवण करना चाहिये।

७ भव भव मे हितकारक ऐसे ज्ञान से जब चिलाति पुत्र, मासतुस मुनि तथा रोहिणीय चोरादिक दुःख से मुक्त होकर सद्गति के भाजन बनें; इसलिये भक्ति पूर्वक ज्ञान ग्रहण करना चाहिये।

८ दस बोल से दुर्लभ ऐसे मनुष्य जन्म को पाकर जो आलस्य से जिनधर्म नही करते है वे शशिप्रभ राजा के समान पश्चाताप करते है इस वास्ते धर्म करना चाहिये।

(९)

१	२	४	५	३
२	१	४	५	३
१	४	२	५	३
४	१	२	५	३
२	४	१	५	३
४	[illegible]	१	५	३

(१०)

१	२	५	४	३
२	१	५	४	३
१	५	२	४	३
५	१	२	४	३
२	५	१	४	३
५	२	१	४	३

(११)

१	४	५	२	३
४	१	५	२	३
१	५	४	२	३
५	१	४	२	३
४	५	१	२	३
५	४	१	२	३

(१२)

२	४	५	१	३
४	२	५	१	३
२	५	४	१	३
५	२	४	१	३
४	५	२	१	३
५	४	२	१	३

९ जैसे विना मनका मिलना, विना दांत का चावना, विना गुरु का पढना, विना नमक का भोजन करना, तथा विना यश का जोना निरर्थक है उसो प्रकार विना भाव का धर्म भो निरर्थक है।

१० सत्य के प्रभाव से आग पानि के सामान गरल अमृत के समान, तथा सर्प पुष्पमाला के समान हो जाता है; यह जानकर सत्यपूर्वक वर्ताव करना चाहिये।

११ परनिंदा करे नहो और स्वनिंदा सुनकर सभ्यता रखे उस मनुष्य को धन्यवाद है।

१२ धर्म और शौक वढ़ाने से वढते हैं तथा घटाने से घटते है।

(१३)

१	३	४	५	२
३	१	४	५	२
१	४	३	५	२
४	१	३	५	२
३	४	१	५	२
४	३	१	५	२

(१४)

१	३	५	४	२
३	१	५	४	२
१	५	३	४	२
५	१	३	४	२
३	५	१	४	२
५	३	१	४	२

(१५)

१	४	५	३	२
४	१	५	३	२
१	५	४	३	२
५	१	४	३	२
४	५	१	३	२
५	४	१	३	२

(१६)

३	४	५	१	२
४	३	५	१	२
३	५	४	१	२
५	३	४	१	२
४	५	३	१	२
५	४	३	१	२

१३. ज्ञान प्राप्त होना सरल है किन्तु ध्यान बहुत दुर्लभ है अत अधिक से अधिक ध्यानस्थ होने का यत्न करना चाहिए अभ्यास से ही ध्यान मे स्थिरता पैदा होती है, अत. अस्थिरता से घबराकर अभ्यास नही छोड़ना चाहिए बिना किसी बाह्य आलबन के मन को मन द्वारा ही अनुशासित कर आत्मस्थ होना ध्यान है ।

१४. धैर्यता साधक का धन है सच्चा साधक किसी भी स्थिति मे धैर्यता नही खोता है । अर्जुन माली के उपसर्ग के समय सुदर्शन ने और देवोपसर्ग के समय काम देव ने अपार धैर्यता रखी थी ।

१५ सुख दुख अपने बोये हुए कर्म रूपी बीजो के ही फल है । उन का कर्त्ता स्वय आत्मा ही है । किसी और को दोष दना मिथ्या है ।

१६. मन मे संसार है तो बाहर भी संसार है मन में संसार नही तो बाह्य संसार आत्मा को मैला नही बना सकता है । आठ कर्मों के पुद्गल सिद्धो के आस पास भी है किन्तु वे उनको स्पर्शते नहीं क्योंकि सिद्धात्मा मे कल्पनाएं नही है ।

(१७)

२	३	४	५	१
३	२	४	५	१
२	४	३	५	१
४	२	३	५	१
३	४	२	५	१
४	३	२	५	१

(१८)

२	३	५	४	१
३	२	५	४	१
२	५	३	४	१
५	२	३	४	१
३	५	२	४	१
५	३	२	४	१

(१९)

२	४	५	३	१
४	२	५	३	१
२	५	४	३	१
५	२	४	३	१
४	५	२	३	१
५	४	२	३	१

(२०)

३	४	५	२	१
४	३	५	२	१
३	५	४	२	१
५	३	४	२	१
४	५	३	२	१
५	४	३	२	१

१७. धन्य है वे मुमुक्षु प्राणी जो पुद्गल और आत्म धर्मों की भिन्नता को समझ चूके है। और पौद्गलिक सुखो को ठुकराकर अध्यात्मिक की ओर अग्रसर है।

१८ अपनी रज जितनी बुराइ को मेरू के तुल्य तथा अन्य के रज जितने गुण को मेरू के तुल्य समदृष्टि का चिह्न है।

१९. हे मन ? अन्य की बुराई देख कर खुश मत हो। यह ससार तो बुराइयो का पिण्ड है ही। तू तो यह देख कि गुण कहा है। बुराइया तो सामान्य है गुण ही विशेष है।

२०. जैसे पक्षी दो पंखो के सहारे उड़ता है उसी तरह हे साधक ! तेरे भी ज्ञान और क्रिया ये दो पंख है। इनके सहारे ही तू साधना के गगन मंडल मे ऊडाने भर सकता है इन पंखो को परिपुष्ट करने की यत्न करो।

आत्म निन्दा

हे आत्मा ! हे चेतन ! हे अकुदृष्टा, कुश्रध्दायां, अ अकार्थं प्रवति, अ रसगृद्धि पणे, अ खोटी दृष्टयां सामायिक दोय घडी मात्र काल में तू मत चितवन करे, क्यारे तूं सम्यक्त मोहनी मे, क्यारे तुं मिश्र मोहनी में, क्यारे तु मिथ्यात्व मोहनी मे, क्यारे तुं स्नेह राग में, क्यारे तु काम राग में, क्यारे तुं दृष्टि राग में, क्या रे तुं कुगुरु में, क्यारे तुं कूदेव में, क्यारे तुं कुधर्म्म में क्यारे तुं ज्ञान विरावना में, क्यारे तु दर्शन विरा-धना मे, क्यारे तु चारित्र विराधना में, क्यारे तुं मनोदड मे, क्यारे तुं वचन दड में, क्यारे तुं काया दड में, क्यारे तुं हास्य में, क्यारे तुं रति मे, क्यारे तुं अरति में, क्यारे तुं भय में, क्यारे तु शोक मे, क्यारे तु दुगन्छा में, क्यारे तुं कृष्णलेस्या मे, क्यारे तूं नील लेस्या में, क्यारे तु कापोत लेस्या मे, क्यारे तु ऋद्धि गारव में, क्यारे तु रस गारव मे, क्यारे तु सातागारव में, क्यारे तु माया शल्य मे, क्या रे तु नियाणा शल्य में, क्या रे तु मिथ्या दर्शन शल्य मे, क्यार थारे तेहरे काठिया दोला आंण फीरेछे, क्यारे थारे अठ्ठारे पाप स्थान दोला आण फिरे छे, रे तुं आत्मा महा-दुष्टी, महादुराचारी, अरे तु हीण तिथरा जाया, रे तु हीण पुन्नोया, रे तु हीण दृष्टि, रे नु अघोर पाप रा करण हार, रे तु कु दृष्टि पापिष्ट, जीव ! प्राय. तो थारे अनतानु वधिया क्रोध, अनंतानूबधियो मान, अनतानु बधिया माया, अने लोभ री चौकडी बापडा थारे खपि नही, गुणठ णो थारे पलटयो नही धिरजगुण थारे आयो नही, तृष्णा रूपी दाह थारे मिटी नही, आकुल व्याकूलता थारे मिटी नही, दरियाव वाला कल्लोल उछल रया छे, तु तो क्रिया करे छे

चारित्र पात्र, धन्य छे जे मुनि प्रभूजी नी आज्ञा प्रमाणे धर्म पाले, हे चेतन तनेई कदै उदय आवसी ? रे चेतन ! थारे उदय कठासु आवे रे वापडा थारे ससारगी बहुलताई घणी, तिवारे तने कठासु उदय आवे, धन छे जांके देश विरति श्रावक जे प्रभूजी नी आज्ञा प्रमाणेषट आवश्यक करे अर्थात सामायिक, चौविसथा, वंदणा, पडिकमणो, काउसग्ग, पचखाण करे ? मनेई कदे उदय आवसी ? रे चेतन ! तुं ऐस खोटा काम करे छे, थारा खोटा हवाल हुसी, थारा खोटा परिणाम देखता तो थारे खोटी गति उदय आवसी ।। दुहा: । सामायिक मन शुद्ध करो, निंदा विकथा पद परिहरो । पढो गुणे वाचण खप करो, जिम भव सागर लिला तरो ॥१॥ सामायिकव्रतरा ए लक्षण छे, थारो तो सामायिक आ छे, सामायिक मन अशुद्ध करो, निंदा विकथा बहुलि करो, तने वाचण पढणरी खप कठे छे, ते तो श्रुत ज्ञान रो बहुमान न कियो, श्रुतज्ञान जी रो गुणनो न कियो, ज्यारे थारे ज्ञानावर्णि रो अन्धकार पडल फिर गयो, श्रुतज्ञान जी रो आराधन करेछे, श्रुतज्ञान जीरो बहुमान करेछे, ज्यारा ज्ञानदर्शन, चारित्र निर्मल होवेछे, जिकांइरे ज्ञान, दर्शन चारित्र निर्मल होवेछे, जिकाइरे ज्ञान री प्राप्ति होवे छे, जिकाइ रे ज्ञान दर्शन, केवल री प्राप्ति होवे है, जिकांई रे मुक्ति रूपीणी स्त्री पाणिग्रहण होवे । ।।दुहा।। दिवस प्रते दिये कोई लखु जाण, सोनाखडी लक्ष्य प्रमाण, तेहने पुणय न होवे जेतलो, सामायिक किया फल तेतलो ।।१। पिण तु चेतन इण भरोसे भूले मां (मत) आ थारी सामायिक उवा (उसी) नहीं भाई, आ सामायिक तो उत्तम जीवारी, भाई आ सामायिक, आणद, कामदेव, सख, पुकरल, पुरणदास सेठ, चदावत सक राजारी, तुं इसे भरोसे भूले मां, रे चेतन! थारी तो सामायिक आ छे ।। दुहा ।। काम राज घरणा चिंतवे, निंद्रा विकथा कर मौन रहे । आरत रा रुद्र ध्यान मन धरे ते सामायिक निसफल

करे ॥१॥ थारी तो सामायिक आछे भाई, और सामायिकरा ए लक्षण छै ॥दुहा॥ आप परायो सरिखो गिणे, कचन पत्थर समवड घरे। साचो थोडो गमतो भणे, ते सामायिक शुद्ध करे ॥१॥ चंद्रावतंसक राजा जे सामायिक व्रत पाल्यो तेह, रे चेतन ! स्व आत्मानो भलो चाहे, पर आत्मानो बुरो चाहे, सो ते पर आत्मनि बुरो न चाहियो, स्व आत्मानोहिज बुरो चाहियो, रे चेतन। तु कंचन री तो वाञ्छा राखे, पत्थर ने दूर करे, थारे छाती उपर पत्थर पडसी कदेइ-कचन री प्राप्ति हुसी नही. रे चेतन तु तो तो मृषावाद बोल रह्यो छे, रे चेतन ! तु तो थारो गुण संभाले तो अवेदि छे, अस्पर्शी छे, अघातिछे, अलीसी छे, अविनाशी छे, जे तु थारी गुण संभाले तो हे भाई, अहो ए मारा दुश्मन, ए म्हारा सज्जन, कुण थारो दुष्मन कुण थारो सज्जन, हे चेतन ! थारे तो आठ कर्म रुपीया शत्रु बेरीछे, ज्याने तुं ज्ञान रुपीयो इधण सूं बाल भस्म करदे, ज्यु थारी आत्मारी गरज सरे, ओहो. हु भव्य छु के अभव्य छु के दुर्भव्य छु, के कोई मारे पोते संसार घणो हिज दीसे छे, प्राय तो हु भाई अभव्य ही दीसु छुं, पछे तो ज्ञान्या भाव दिठो सो खरो, रे चेतन ! तुं सामायिक तो आ करे छे, खुणे खाज मोडे करडका, उंघतणा लेवे सरडका, थारी सामायिक तो माया ज्ञानी सकारसी तो लेखे लागसी।

॥ दुहा ॥ आत्मनिंदा आपणी, ज्ञान सार मुनिकोन।
जे आत्म निंद्याकर, सो नर सुगुन प्रवीण ॥
इति श्री आत्म निंदा समाप्तम् ॥

सो सून्य मन सु करेछे, धीयं गुण सुं करीश सो थारे लेखे लागसी, शून्य पणे करी जो क्रिया, सो तो छारपर लीपणे सरीखी छे. रे चेतन ! अनत काय, अभक्ष, शीलवृत्त, जरदो, डामली अमल भांग तमाखुरा सोस ले लेके भांज्या, रे चेतन ! वापडा थारो कठे छूटणो होसी हे चेतन तु पुद्गलरे वास्ते कितरी एक आकुल व्याकुल ताई कर रयोछे; ओ हो ! म्हारे पारस पत्थर और नव निधान म्हारे रसकूंपी, मारे रसायण, मारे चित्रावेल, म्हारे अमृत गुट का देवता ने वश करू वा वादशाह हो जाऊं वा राजा हो जाऊ, सेना पति हो जाऊ रे वापडा ! थारे तो ए वाता उपजे ही उपजे, दशमे गुणठाणे वाला ने ही लोभनो परिहार नही तो रे वापडा थारी तो गरज कठेसु सरे। हे चेतन। तु यु मन मे चितव रयोछे, म्हारो घर, म्हारो पिता, म्हारो माता, म्हारो पुत्र, म्हारी कलत्र (स्त्री) म्हारी पुद्गल, अरे चेतन ! चौरासी फिरते चौरासी लाख घर करतो फिर्यो ससार मे न किणरो तुं छे, न कोई थारो रे चेतन ! थारी उत्पति तो देख. केई वार मा पणे, केई वार पुत्र पणे, केईवार पुत्री पणे, केई वार स्त्री पणे, ए थारा नाच तो देख, ठगरी वेटी कह्यो थो हे माताजी, हे पिताजी हु इतरा पाप करू छुं सो कुण भोगवसी, ए वेटी करेसी मो भोगवसी, तो धिकार पडो ईण संसार ने, संसार मे कोई किण रो नही, ओ मनुष्य जन्म, आर्य देश, आर्य कुल, श्रावक रो खोलियो, प्रभूजी रो धर्म ते पुण्यानुबन्धी पुण्य सुं पायो, पाय कर हे वापडा ! ते ब्राह्मण कागला चितामणी रत्न पाकर खोयो, विम ते, चितामणि रत्न रूप धर्म खोयो, थारी आत्मारी गरज क्यूं कर सरे, रे चेतन तु कहे, हु, रे तु कुण ? भिष्टा मायली लट्ट, तुं हीज हुओ, मान रुपीये गज उपर वाहुवल चढयो, अरे संज्वलनो मान थो, ब्राह्मी सु दरी वाई सरीखी, समजावण

वाली मिली जद समजीया, वापड़ा जिण रो मान, सो थारो किसो हवाल होसी, ऐ चेतन ! देख तु भरत म्हाराज जिणारे कितनी एक राजरिद्धि सोभाग हुतो तो, के धिक्कार हुवो म्हारे राजने, धिक्कार हुओ पाट ने, धिक्कार हुओ चक्रवर्ती की पदवी ने, धिक्कार हुवो मारे विषय सुखो ने, धन छे, जे तीर्थंकर महाराज नो देश विरती धर्म पाले छे, धन छे जे सर्व विरती धर्म पाले छे, धन जे दान दे छे, धन जे शीयल पाले छे धन जे तपस्या करे छे, धन्य जे भावना भावे छे, तो के भावना 'भावता' भर्तादिक केवल ज्ञान, केवल दर्शन पाम्या, तो के तु उवारी बराबरी मत कर उवे तो तेसठ शिलाकारा पुरुष चर्म शरीरी, चौथे आरे रा जीव तुं पंचम काल को भरत क्षेत्र रो कोडलो. किति एक बात ए चेतन कर्म अजीब वस्तु, रे चेतन ! तु जीव वस्तु, रे चेतन ! जीवसुं जीवतो सदा परचो करे, पिण अजीवसु क्युं करे, पिण तु-निर्बल, कर्म महा सबल. चेतन ! कर्म तो चउदे पूर्व-धारिया ने उठाया पटकिया, इग्यारमें गुण ठाणे रा जीव भवन भावन केवलीजी; कमल प्रभाचार्यजी, महा विदेह रा मान-वियने डिगा दिया, तुं पंचम काल रो जीव किति एक बात आठ कर्म एक सो अठावन प्रकृति प्रभू किमकर जीत्यो जाय, मोह कर्म लारे लाग्यो, प्रभू किमकर जीतया जाय सग लगे आय हमारी विनती, हे चेतन ! चारित्र री फोजों मांही रही, सदबोध सु हरावी आज्ञा माही रही, सदा गम सुं परचय राख, संतोष गुण धारण कर, तृष्णा रूपणी दाहने पूठी मार ज्यु थारे आत्मारी गरज सरे, धन छे साधु मुनिराज पाँचे सुमते सुमता तीने गुप्ते गुप्ता, छकायना पीहर, सात महा भयना टालण हार, आठमदना का जीपक नव विध, ब्रह्मचर्य व्रत नी वाडना राखण हार, दश विध यति धर्मना उजवालक, इग्यारें अँग ना भणणहार, कुखी, सबल, मल मलीन गात्र

चारित्र पात्र, धन्य छे जे मुनि प्रभूजी नी आज्ञा प्रमाणे धर्म पाले, हे चेतन तनेई कदे उदय आवसी ? रे चेतन ! थारे उदय कठासु आवे रे बापडा थारे संसार री बहुलताई घणी, तिवारे तने कठामु उदय आवे, धन छे जांके देश विरति श्रावक जे प्रभूजी नी आज्ञा प्रमाणेपट् आवश्यक करे अर्थात सामायिक, चौविसथा, वंदणा, पडिकमणो, काउसग्ग, पचखाण करे ? मनेई कदे उदय आवसी ? रे चेतन ! तु ऐस खोटा काम करे छे, थारा खोटा हवाल हुसी, थारा खोटा परिणाम देखता तो थारे खोटी गति उदय आवसी ।। दुहा. । सामायिक मन शुद्ध करो, निंदा विकथा पद परिहगे । पढो गुणे वाचण खप करो, जिम भव सागर लिला तरो ॥१॥ सामायिकव्रतरा ए लक्षण छे, थारो तो सामायिक आ छे, सामायिक मन अशुद्ध करो, निंदा विकथा बहुलि करो, तने वांचण पढणगी खप कठे छे, ते तो श्रुत ज्ञान रो बहुमान न कियो, श्रुतज्ञान जी रो गुणनो न कियो, ज्यारे थारे ज्ञानावर्णि रो अन्धकार पडल फिर गयो, श्रुतज्ञान जी रो आराधन करेछे, श्रुतज्ञान जीरो बहुमान करेछे, ज्यारा ज्ञानदर्शन, चारित्र निर्मल होवेछे, जिकाइरे ज्ञान, दर्शन चारित्र निर्मल होवेछे, जिकाइरे ज्ञान री प्राप्ति होवे छे, जिकाइ रे ज्ञान, दर्शन, केवल री प्राप्ति होवे है, जिकांई रे मुक्ति-रूपीणी स्त्री पाणिग्रहण होवे । ।।दुहा।। दिवस प्रते दिये कोई द्यु त्राण, सोनाखडी लक्ष्य प्रमाण, तेहने पुणय न होवे जेतलो, सामाजिक कियां फल तेतलो ॥१। पिण तु चेतन इण भरोसे भूले मां (मत) आ थारी सामायिक उवा (उसी) नई भाई, आ सामायिक तो उत्तम जीवारी, भाई आ सामायिक, आणद, कामदेव, संख, पुक्कल, पूरणदास सेठ, चडावत सक राजारी, तु इयो भरोने भूले मां, रे चेतन! थारी तो सामायिक आ छे ।। दुहा ।। काम काज वरणा चिनवे, निद्रा विकथा कर सीज रहे । आरत रा रुद्र ध्यान मन धरे ते सामायिक निसफल

करे ॥१॥ थारी तो सामायिक आछे भाई, और सामायिकरा ए लक्षण छै ॥दुहा॥ आप पराओ सरिखो गिणे, कचन पत्थर समवड धरे। साचो थोडो गमतो भणे, ते सामायिक शुद्ध करे ॥१॥ चंद्रावत सक राजा जे सामायिक व्रत पाल्यो तेह, रे चेतन ! स्व आत्मानो भलो चाहे, पर आत्मानो बुरो चाहे, सो ते पर आत्मनि बुरो न चाहियो, स्व आत्मानोहिज बुरो चाहियो, रे चेतन। तु कंचन री तो वांन्छा राखे, पत्थर ने दूर करे, थारे छाती उपर पत्थर पडसी कदेइ-कचन री प्राप्ति हुसी नही. रे चेतन तु तो तो मृषावाद बोल रह्यो छे, रे चेतन ! तु तो थारो गुण संभाले तो अवेदि छे, अस्पर्शी छे, अघातिछे, अलीसी छे, अविनाशी छे, जे तु थारी गुण संभाले तो हे भाई, अहो ए मारा दुश्मन, ए म्हारा सज्जन, कुण थारो दुश्मन कुण थारो सज्जन, हे चेतन ! थारे तो आठ कर्म रूपीया शत्रु बेरीछे, ज्याने तुं ज्ञान रुपीये इधण सूं बाल भस्म करदे, ज्यु थारी आत्मारी गरज सरे, ओहो, हु भव्य छु के अभव्य छुं के दुर्भव्य छु, के कोई मारे पोते संसार घणो हिज दीसे छे, प्राय. तो हु भाई अभव्य ही दीसु छु, पछे तो ज्ञान्या भाव दिठो सो खरो, रे चेतन ! तुं सामायिक तो आ करे छे, खुणे खाज मोडे करडका, उघतणा लेवे सरडका, थारी सामायिक तो माया ज्ञानी सकारसी तो लेखे लागसी।

॥ दुहा ॥ आत्मनिंदा आपणी, ज्ञान सार मुनिकीन।
जे आत्म निंद्याकर, सो नर सुगुन प्रवीण ॥

इति श्री आत्म निंदा समाप्तम् ॥

६ भावना

१. पेली भावना-समदृष्टी पुरुष आपके चेतन ने असख्याता परदेशी जाणे।

२. दूसरी भावना-समदृष्टी पुरुष आपके चेतन ने आठ कर्मों का करता जाणे।

३. तीसरी भावना-समदृष्टी पुरुष आप के चेतन ने आठ कर्मों का भोक्ता जाणे।

४. चौथी भावना-समदृष्टी पुरुष आपका आठ रुचिक परदेश सिद्ध समान जाणे।

५. पांचवी भावना-समदृष्टी पुरुष आपके चेतन ने मोक्ष जाने वाली जाणे।

६. छट्टी भावना-समदृष्टी पुरुष मोक्ष का चार कारण जाणे, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप।

ज्ञान का सार

कषायो को जीते
इन्द्रियों का दमन करें
शक्ति अनुसार तप करे

– पारस मुनि

मन के भाव

चतुर्वर्ग का समाधक, यह मानव-जीवन ।
शान्ति-दयादि गुणो का सागर पावन-जीवन ।।
पाप पंक में फँसकर मैंने इसे गवाया ।
मानों चिंतामणि के द्वारा काग उडाया ।।१।।
उच्च हृदयता उच्च भावता और सरलता ।।
कभी न मैंने इनकी समझी हाय सफलता ।।
जीवन मणि को इसीलिये निस्सार समझकर ।
फेंक दिया दुष्कर्म-गर्त्त में जैसे पत्थर ।।२।।
दुर्बल मनमे जब कुविचारो का रण मचता ।
नहीं करने के काम उन्हे तब करने लगता।
नीच वासनाओ की आग धंधकने लगती ।
शीलादिक-शुभकर्म भस्म वो पल मे करती ।।३।।
धर्म-कर्म का मर्म कभी न विचारा मैंने ।।
पापो का परिणाम कभी न संभारा मैंने ।।
किन्तु दिनोंदिन अंत. पतित होकर अपने को ।
दिया पाप के हाथ कुगति में ले चलने को ।।४।।
बगुलो का सा ढोंग बनाया मैंने बाहिर ।
बतलाया अवतार धर्म का सबको जाहिर ।।
धर्म धुरीण समझ सब करते आदर मेरा ।
पर है अतिशय पतित कलंकित जीवन मेरा ।।५।।
ललनाओ की रूपराशि जब नजरों पड़ती ।
हृदय सिंधु को विचलित करने व्याकुल करती ।।
मुझे जान पडता है तब यह जीवन मेरा ।
किसी महा प्रच्छन्न-शक्ति ने आकर घेरा ।।६।।

मुझको उसने दुनियां से वेकार वनाया।
तन मन की सुधि भुला मोह में मुझे फँसाया ॥
रोरोकर दिनरात अश्रु की धार वहाता।
जीवन के उन वुरे दिनो पर अव पछताता । ७॥

सरसों और सुमेरु-शैल में अंतर जितना।
आत्मतेज के सन्मुख इंद्रिय वल है उतना ॥
तो भी उसने विजय प्राप्त कर मुझे गिराया।
विषय पंक मे फसा देख निज दास वनाया ॥८॥

भूखे प्यासे दुखी जनों पर तरस न खाया।
कभी न उसकी वुरी दशा पर अश्रु वहाया ॥
किया न सच्चा प्रेम किसी से मानी होकर।
वना जाति का कण्टक मैं नर जीवन पाकर ॥९॥

हो मानव जीवन की यदि कुछ कदर हृदय मे।
गिनते हो यदि सुन्दर सव से इसे जगत में ॥
तो न कभी प्रिय पाठक गन्दा इसे वनाना।
विषय विषैले विष धर से मत कभी डसाना ॥१०॥

स्वार्थवृत्ति से मलिन हृदय को शुद्ध वनाकर।
प्रेम देव के लिये उने उपहार चढाकर ॥
करना जग उपकार कभी मत पीछे हटना।
देकर भी निज प्राण कीर्ति को अचला करना ॥११॥

शुद्ध हृदय से यदि प्रेम की भक्ति करोगे।
जीवमात्र से वन्धु समझकर प्रेम करोगे ॥
वो सारा संसारा तुम्हारा दास वनेगा।
मानव भूषण कह करके सम्मान करेगा ॥१२॥

कुमुद